

२२४

घनाघनदं का श्रृङ्गार काव्य

डॉ. रामदेव शुक्ल

रु ११.३७०/-
राम | पा

हिन्दुस्तानी एकेडेमी पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या.....	११३९०८
पुस्तक संख्या.....	३४७
क्रम संख्या.....	१२६५१

१२६५१

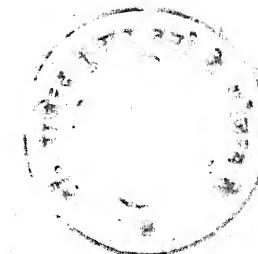
માર્ગ દોડાને રજુ કરવાની

કો

સંપૂર્ણ હોય હોય એવી વાત એ

₹ ५३.८६/-
——————
94.3 - 22

धनानंद
का
शृंगार
कल्य



घनानन्द का शुंगार काव्य

डा० रामदेव शुक्ल

M

दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड
दिल्ली बंबई कलकत्ता मद्रास
समस्त विश्व में सहयोगी कंपनियाँ

© डा० रामदेव शुक्ल

प्रथम संस्करण : 1975

भारत सरकार से रियायती दर पर प्राप्त कागज
इस पुस्तक में इस्तेमाल कियो गया है।

मूल्य : 12.00

एस० जी० वसानी द्वारा दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड के
लिए प्रकाशित और पुष्प प्रिंटिंग प्रेस, शाहदरा, दिल्ली-110032 में मुद्रित ।

यह पुस्तक

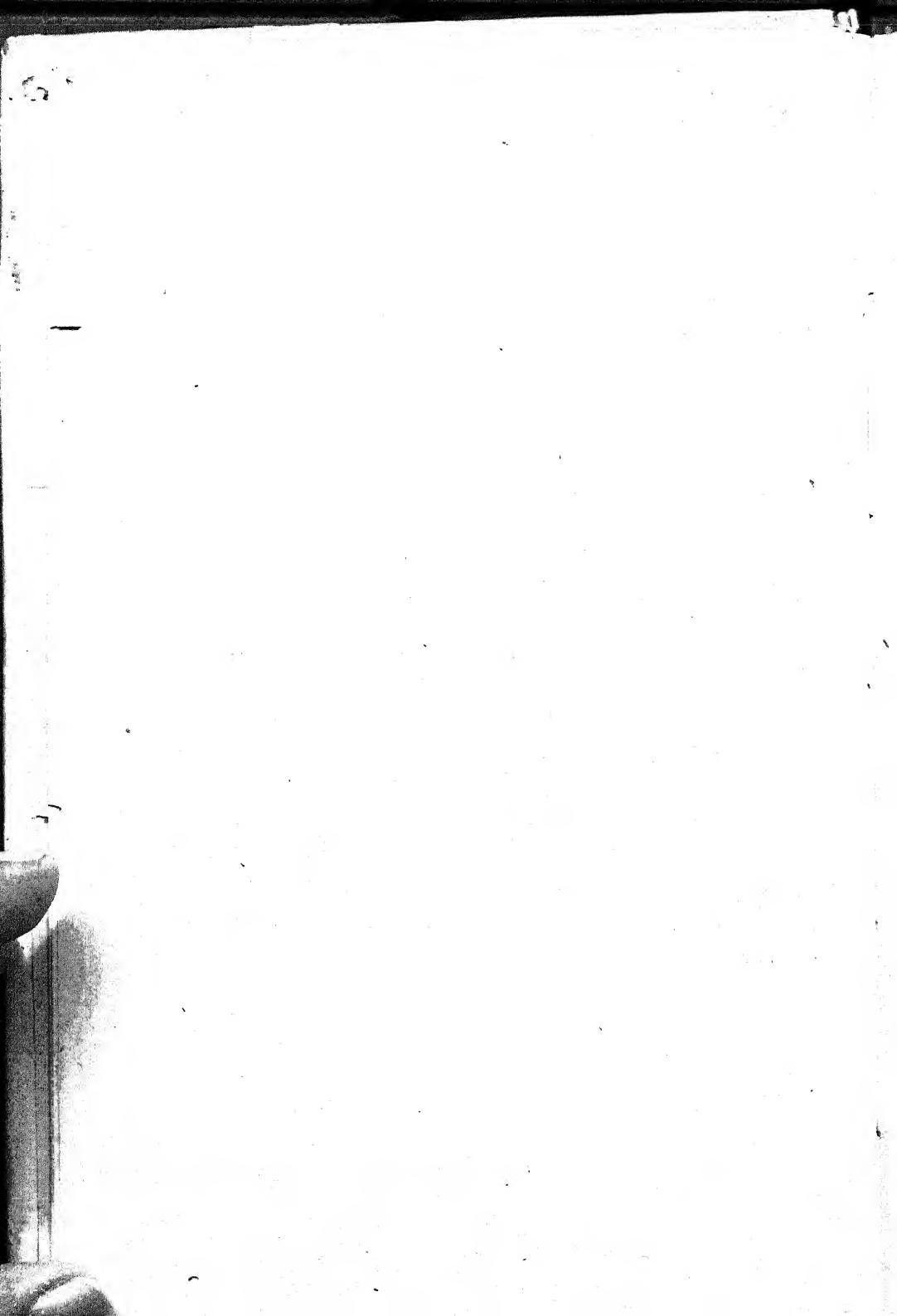
घनानन्द की हिंदी कविता की रीतिकालीन महान विभूतियों में गणना होती है। रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, डा० नगेन्द्र आदि हिंदी के प्रायः सभी मूर्धन्य आलोचकों ने घनानन्द के काव्य कौशल और प्रतिभा की मुक्तकंठ से सराहना की है।

यहां संक्षेप में घनानन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व से संबंधित सारे प्रश्नों और तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। मैंने सोलह संक्षिप्त अध्यायों में रीतिकालीन कवियों में घनानन्द का स्थान, उनकी प्रेमपीर, शृंगार काव्य का महत्व और सौंदर्य, परंपरा और परिवेश का प्रभाव, विरहानुभूति की विकासात्मक स्थितियाँ, प्रेम संबंधी उनकी अवधारणा, भक्ति, मौन की महत्ता, अलंकार, लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य, भाषा का स्वरूप, छंद योजना आदि सभी महत्वपूर्ण पक्षों की विवेचना प्रस्तुत की है।

पुस्तक विशेष रूप से उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है, जो संक्षेप में घनानन्द के काव्य पर अद्यतन चितन से परिचित होना चाहते हैं।

गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर।

रामदेव शुक्ल



अनुक्रम

रीतिकालीन कवियों का वर्ग-विभाजन और घनानन्द का स्थान	1
घनानन्द की प्रेम-पीर	9
घनानन्द का संयोग शृंगार	15
पूर्वराग की स्थिति	22
संयोग शृंगार के प्रगाढ़ चित्र	25
संयोग वर्णन में परंपरा का स्वीकरण	34
विरहानुभूति की विकासात्मक स्थितियाँ	38
वियोग वर्णन में परंपरा और परिवेश का प्रभाव	43
प्रेम के संबंध में घनानन्द की अवधारणा	54
घनानन्द की भक्ति	64
मौन की महत्ता	72
घनानन्द के काव्य में अलंकार	77
घनानन्द के काव्य में लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य	93
घनानन्द की ब्रजभाषा का स्वरूप और उसकी विशेषताएं	101
घनानन्द की छंद योजना	109
उपसंहार	113



रीतिकालीन कवियों का वर्ग-विभाजन और घनानन्द का स्थान

हिंदी साहित्य के इतिहास में काल-निर्धारण और प्रवृत्ति-निरूपण का कार्य गार्गा द तांसी से लेकर अब तक अनेक महत्वपूर्ण विद्वानों द्वारा किया गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' एक और जहाँ 'प्रवृत्ति-निरूपण' और 'सुसंगत काल-विभाजन' की दृष्टि से किया जाने वाला प्रथम प्रयास है, वहीं अनेक महत्वपूर्ण परवर्ती प्रयत्नों के बावजूद, अंतिम रूप से महत्वपूर्ण बना हुआ है। अधिकांश प्रवृत्तियों और उनसे संबद्ध कवियों के विषय में आचार्य शुक्ल के निर्णय परवर्ती इतिहास लेखकों को जाने-अनजाने प्रभावित करते रहे हैं। यहाँ रीतिकाल के संबंध में उनके विचारों की परीक्षा करना ही अभीष्ट है। रीतिकाल का सामान्य परिचय प्रस्तुत करते हुए शुक्ल जी ने पहला वाक्य (भक्ति के संदर्भ में) यह लिखा है कि : 'हिंदी काव्य अब पूर्ण प्रौढ़ता को पहुंच गया है।'¹ आगे के काव्य अर्थात् रीतिकालीन काव्य के प्रति उनकी इस धारणा का यहाँ स्पष्ट संकेत मिल जाता है कि उसमें अब विकास की संभावनाएं समाप्त हो चुकी थीं। उनके ये विचार इतिहास के साथ ही उनके समीक्षा संबंधी निर्बंधों, भूमिकाओं और ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से प्रकट हुए। हिंदी जगत इससे पूर्णतः परिचित है। 'रीतिकाल' को शुक्ल जी ने सूर, तुलसी, जायसी वाले भक्ति-काव्य के सामने दूसरे दर्जे का ही ठहराया। इस तरह रीतिकालीन हिंदी काव्य के प्रति जो धारणा शुक्ल जी के इंगित पर आगे पाठकों में बनी उसका निराकरण किया आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र और डा० नगेन्द्र ने। रीतिकालीन काव्य-वैभव का उद्घाटन करने में इन विद्वानों का योगदान अप्रतिम है। किन्तु शुक्ल जी द्वारा प्रक्षिप्त अवधारणा (प्रोजेक्टेड कंसेप्शन) का खंडन इन लोगों से भी न हो सका। यह दूसरी बात है कि भारतीय भावक की संवेदना का मूल तत्त्व एक होने और आचार्य शुक्ल द्वारा उसका सम्यक् प्रतिनिधित्व होने के कारण,

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 226.

उनके द्वारा की गई स्थापनाओं का विस्थापन, बहुत आसानी से संभव भी नहीं है।

आचार्य शुक्ल ने रीतिकाल के कवियों के आठ (गद्य और नाटक को भी ले लें तो इस) वर्गों का स्पष्ट उल्लेख किया है :

1. **रीतिग्रंथकार कवि :** इस वर्ग में 57 कवियों का उल्लेख हुआ है, जिनको उन्होंने रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि कहा है, जिन्होंने लक्षण ग्रंथ के रूप में रचनाएं कीं।¹
2. **रीतिकाल के अन्य कवि :** इस शीर्षक से आचार्य शुक्ल 'उन कवियों का उल्लेख करते हैं जिन्होंने रीतिग्रंथ न लिखकर दूसरे प्रकार की पुस्तकें लिखी हैं।² इन कवियों के विषय में शुक्ल जी का यह कथन महत्वपूर्ण है कि : 'ये पिछले वर्ग के प्रतिनिधि कवियों से केवल इस बात में भिन्न हैं कि इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कहकर उनके अंतर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है।'³ आगे जोड़ा गया है : 'ऐसे कवियों में धनानन्द सर्वश्रेष्ठ हुए हैं।'⁴
3. **प्रबंध काव्य लिखने वाले कवि :** प्रबंध काव्य की उन्नति इस काल में कुछ विशेष नहीं हो पाई। लिखे तो अनेक कथा प्रबंध गए पर उनमें से दो ही चार में कवित्व का यथेष्ट आकर्षण पाया जाता है।⁵ आगे ऐसे ही कवियों और उनकी रचनाओं के नाम गिनाए गए हैं।
4. **वर्णनात्मक प्रबंध लिखने वाले कवि :** कथात्मक प्रबंधों से भिन्न एक और प्रकार की रचना भी बहुत देखने में आती है जिसे हम वर्णनात्मक प्रबंध कह सकते हैं। दानलीला, मानलीला, जलविहार, वनविहार, मृगया, झूला वर्णन, होली वर्णन, जन्मोत्सव वर्णन, मंगल वर्णन, राम-कलेवा इत्यादि इसी प्रकार की रचनाएं हैं।⁶
5. **नीति के फुटकल पद्य कहने वाले कवि :** चौथा वर्ग नीति के फुटकल पद्य कहने वालों का है। इनको हम 'कवि' कहना ठीक नहीं समझते। अतः ऐसी रचना करने वालों को हम 'कवि' न कहकर 'सूक्तिकार' कहेंगे। रीतिकाल के भीतर वृद्ध, गिरिधर, धाघ और वैताल अच्छे सूक्तिकार हुए हैं।⁷
6. **ज्ञानोपदेशक कवि :** पांचवाँ वर्ग ज्ञानोपदेशकों का है जो ब्रह्मज्ञान और वैराग्य की बातों को पद्य में कहते हैं। ये कभी-कभी समझाने के लिए उपमा, रूपक आदि का प्रयोग कर देते हैं, पर समझाने के लिए ही करते हैं, रसात्मक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए नहीं।⁸

7. भक्त कवि : छठा वर्ग कुछ भक्त कवियों का है जिन्होंने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद आदि पुराने भक्तों के ढंग पर गाए हैं।¹
8. आश्रयदाताओं की प्रशंसा में लिखने वाले कवि : आश्रयदाताओं की प्रशंसा में वीर रस की फुटकल कविताएं भी वरावर बनती रहीं, जिनमें युद्धवीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी।
9. गदा लिखने वाले : भक्ति काल के समान रीतिकाल में भी थोड़ा-बहुत गदा इवर-उधर दिखाई पड़ जाता है पर अधिकांश कच्चे रूप में।²
10. नाटक लिखने वाले : इसी रीतिकाल के भीतर रीवां के महाराज विश्वनाथ सिंह ने हिंदी का प्रथम नाटक (आनंद रघुनंदन) लिखा। इसके उपरांत गणेश कवि ने 'प्रद्युम्न विजय' नामक एक पद्यबद्ध नाटक लिखा।³

उपर्युक्त वर्गों के अधिकांश कवियों और उनके काव्य का महत्व नहीं के बराबर ही स्वीकार किया गया। शुक्ल जी ने किसी को सूक्ष्मिकार कहा, किसी को उपदेशक और किसी-किसी रचना के विषय में तो उन्होंने यहां तक लिख दिया कि : 'उनकी रचना में सच पूछिए तो कवियों ने अपनी प्रतिभा का अपव्यय ही किया।'⁴

रीतिग्रंथकार प्रतिनिधि कवियों के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के कवियों में 46 कवियों की गणना शुक्ल जी ने की है। कवियों के विवरण के संबंध में उन्होंने भूमिका में कहा है : 'कवियों के परिचयात्मक विवरण मैंने प्रायः 'मिश्रवंधुविनोद' से ही लिए हैं। ... यदि कुछ कवियों के नाम छूट गए या किसी कवि की मिली हुई पुस्तक का उल्लेख नहीं हुआ तो इससे मेरी कोई उद्देश्य हानि नहीं हुई। उस काल के भीतर जितने कवि मैंने लिए हैं उतने ही जरूरत से ज्यादा मालूम हो रहे हैं।'⁵

शुक्ल जी के विभाजन और वर्गीकरण का स्पष्ट संकेत है कि रीतिकालीन कवियों में दो वर्ग महत्वपूर्ण हैं :

1. लक्षणग्रंथों के रूप में रचना करने वाले रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि।
2. वे (महत्वपूर्ण कवि) जो 'पिछले वर्ग के प्रतिनिधि कवियों से केवल इस बात में भिन्न हैं कि इन्होंने क्रम से रसों, भावों, नायिकाओं और अलंकारों के लक्षण कह कर उनके अंतर्गत अपने पद्यों को नहीं रखा है।'⁶

यहां एक बात और भी ध्यान में आती है कि इन दूसरे प्रकार के कवियों

1-4. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 309, 310. 5. वही, भूमिका पृ० 5-6.

6. वही, पृ० 307.

को, प्रतिनिधि कवियों से निम्नकोटि का कवि शुक्ल जी नहीं मानते हैं : 'पिछले वर्ग के कवियों से केवल इस बात में इनको भिन्न मानते हैं कि उन्होंने लक्षण ग्रंथों की पढ़ति नहीं अपनाई। अधिकांश में ये भी शृंगारी कवि हैं और उन्होंने भी शृंगार रस के फुटकल पद्य कहे हैं। रचना-शैली में किसी प्रकार का भेद नहीं है।'

अपने ही बनाए वर्ग-भेद को शुक्ल जी ने बिहारी के संदर्भ में तोड़ दिया है। उन्होंने बिहारी को प्रतिनिधि (अर्थात् रीतिग्रंथकारों) के वर्ग में रख दिया है। इसकी सफाई देते हुए शुक्ल जी ने लिखा है : 'दोहों को बनाते समय बिहारी का व्यान लक्षणों पर अवश्य था। इसीलिए हमने बिहारी को रीतिकाल के फुटकल कवियों में न रखकर, उक्त काल के प्रतिनिधि कवियों में ही रखा है।'

आचार्य शुक्ल के योग्य शिष्य डा० विज्वनाथप्रसाद मिश्र ने रीतिकालीन काव्य पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने आचार्य शुक्ल द्वारा निर्दिष्ट संकेतों को अपने विस्तृत और गहन अध्ययन के बल पर विशेष रूप से विकसित किया है। मिश्र जी ने शुक्ल जी के दो संकेतों का रीतिकालीन काव्य के अध्ययन में विशेष विस्तारपूर्वक उपयोग किया : (1) रीतिकाल का नामकरण करते हुए आचार्य शुक्ल ने 'रीतिकाल' नाम का प्रयोग किया किन्तु 'शृंगार की प्रधानता' को स्वीकार करते हुए उन्होंने सुझाव दिया कि 'इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है।'¹ मिश्र जी ने आगे चलकर अनेक खंडन-मंडन के उपरांत 'शृंगारकाल'² नाम को ही उपयुक्त माना, (2) आचार्य शुक्ल का दूसरा संकेत बिहारी के लिए वर्ग की सीमा को अस्वीकार करने में निहित था। उन्होंने रीतिग्रंथों का निर्माण करने वाले कवियों का जो वर्ग बनाया, बिहारी को उसी में रखा और इसके लिए उन्होंने सफाई भी प्रस्तुत की। श्री मिश्र जी ने बिहारी की उन विचेषताओं को विशेष रूप से रेखांकित किया जिनके कारण आचार्य शुक्ल ने लक्षणग्रंथों के निर्माण से विमुख बिहारी को उसी पंक्ति में स्थान दिया था जो लक्षणग्रंथ लेखक कवियों की थी। मिश्र जी ने इसीलिए केवल बिहारी के लिए एक अलग वर्ग की स्थापना की। शृंगार काल में 'रीतिबद्ध और रीतिमुक्त कवियों से उन कवियों को भी पृथक् करना होगा जो रीतिसिद्ध हैं। जिन्होंने रीति की सारी परंपरा सिद्ध कर ली थी।'³ इस वर्ग में बिहारी के अतिरिक्त मिश्र जी ने किसी दूसरे कवि को नहीं रखा।

बिहारी के लिए बने इस तीसरे वर्ग को अस्वीकार करने का सवाल ही नहीं था। इसीलिए इस वर्ग-विभाजन को लगभग सबने स्वीकार कर लिया।

आचार्य शुक्ल की स्थापना का ही यह विकास है। रीतिकाल के कवियों

1-3. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 307, 242, 233.

4. हिंदी साहित्य का अतीत, भाग-2, अनुवचन, पृ० 8-9.

5. वही, पृ० 611.

के वर्ग-विभाजन और उनमें बिहारी की स्थिति के संबंध में आचार्य शुक्ल की धारणा को एक बार फिर देखने की आवश्यकता है।

बिहारी के मूल्यांकन के विषय में शुक्ल जी यह मानते थे कि रीतिकालीन कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि बिहारी को मिली है किन्तु यह भी उन्होंने रेखांकित किया कि उसका कारण काव्य की श्रेष्ठता की अपेक्षा अन्य बातों में निहित था। 'बिहारी की कृति का मूल्य जो बहुत अधिक आंका गया है उसे अधिकतर रचना की बारीकी या काव्यांगों के सूक्ष्म विन्यास की निपुणता की दृष्टि से ही समझना चाहिए जैसे किसी हाथीदांत के टुकड़े पर महीन बेलबूटे देख कर पारखी घंटों बाहवाह किया करते हैं। पर जो हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धारा में कुछ देर अपना मन मरन रखना चाहते हैं: उनका संतोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का काव्य हृदय में किसी ऐसी लय या संगीत का संचार नहीं करता जिसकी स्वरधारा कुछ काल तक गूंजती रहे। यदि घुले हुए भावों का आभ्यंतर प्रवाह बिहारी में होता तो वे एक दोहे पर ही संतोष न करते। मार्मिक प्रभाव का विचार करें तो देव और पद्माकर के कवित्त-सर्वैयों का-सा गूंजने वाला प्रभाव बिहारी के दोहों का नहीं पड़ता।' १०१ दूसरी बात यह है कि भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता। कविता उनकी शृंगारी है, पर प्रेम की उच्च भूमि पर नहीं पहुंचती, नीचे ही रह जाती है।'

जिस बिहारी के महत्त्व पर मुश्य होकर आचार्य शुक्ल उनके लिए अपनी ही बनाई हुई वर्ग-मर्यादा को तोड़ देते हैं, उनके काव्य में उन्हें 'प्रेम की उच्च भूमि', 'घुले हुए भावों का आभ्यंतर प्रवाह' और 'हृदय के अंतस्तल पर मार्मिक प्रभाव' डालनेवाली 'भावधारा' का सर्वथा अभाव दिखाई पड़ता है।

मिश्र जी ने बिहारी के काव्य का अत्यंत विशद विश्लेषण और मूल्यांकन किया है किन्तु आचार्य शुक्ल द्वारा संकेतित 'अभावों' के विरुद्ध अनावश्यक वकालत करने का हल्का काम नहीं किया।

धनानन्द के संबंध में शुक्ल जी के विचारों को जानने के क्रम में सबसे पहले ध्यान जाता है, कवि के संबंध में उनके प्रथम वाक्य पर: 'ये साक्षात् रसमूर्ति और ब्रजभाषा काव्य के प्रधान स्तंभों में हैं।' १०२ आगे धनानन्द की विशेषताएं बताते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं: 'इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। विप्रलंभ शृंगार ही अधिकतर उन्होंने लिखा है। ये वियोग शृंगार के प्रवान मुक्तकाकार कवि हैं। 'प्रेम की पीर' ही लेकर उनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा

जुबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।¹... 'प्रेमदशा की व्यंजना ही उनका अपना क्षेत्र है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशा का उद्धाटन जैसा इनमें है वैसा हिंदी के अन्य शृंगारी कवि में नहीं।'²... 'भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानों इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भाव-भंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में भोड़ सकते थे। इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी।'³

बिहारी के साथ तुलना का लोभ भी आचार्य शुक्ल संवरण नहीं कर सके और आगे उन्होंने लिखा : 'यद्यपि इन्होंने संयोग और वियोग दोनों पक्षों को लिया है, पर वियोग की अंतर्दशाओं की ओर ही उनकी दृष्टि अधिक है। वियोग वर्णन भी अधिकतर अंतर्वृत्ति निरूपक है, बाह्यार्थ निरूपक नहीं। घनानन्द ने न तो बिहारी की तरह विरह ताप को बाहरी माप से मापा है न बाहरी उछल-कूद ही दिखाई है। जो कुछ हलचल है वह भीतर की है बाहर से वह वियोग प्रशांत और गंभीर है, न उसमें करवटें बदलना है, न सेज का आग की तरह तपना है, न उछलकूद कर भागना है। उनकी 'मौनमधि' पुकार है।'⁴

और आगे बढ़कर शुक्ल जी कहते हैं : 'उक्ति का अर्थगर्भत्व भी घनानन्द का स्वतंत्र और स्वावलंबी होता है, बिहारी के दोहों के समान साहित्य की रूढ़ियों (जैसे नायिकाभेद) पर आश्रित नहीं रहता। उक्तियों की सांगोपांग योजना या अन्विति इनकी निराली होती है।'⁵

स्पष्ट है कि काव्य के जिस रूप को (या काव्य में जिस प्रकार की भाव-स्थिति को) आचार्य शुक्ल श्रेष्ठ मानते हैं वह बिहारी की अपेक्षा घनानन्द में अधिक उपलब्ध है। फिर भी बिहारी की तुलना में घनानन्द को वे बहुत कम महत्व दे सके हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि घनानन्द को भी रीतिवद् कवियों या लक्षण ग्रंथकारों की पंक्ति में रख देना ही उचित होता, (वह तो बिहारी के संदर्भ में ही गलत हुआ है) किन्तु घनानन्द के समुचित मूल्यांकन में शुक्ल जी की इस प्रवृत्ति का नकारात्मक प्रभाव अवश्य पड़ा है।

'रीतिकाल के अन्य कवि' नामक अध्याय में शुक्ल जी ने श्रेष्ठ कवियों (जो प्रतिनिधि कवियों से केवल लक्षण ग्रंथ न लिखने के कारण भिन्न हैं) के संदर्भ में कहा है कि 'ऐसे कवियों में घनानन्द संवर्शेष्ठ हैं।'⁶ किन्तु घनानन्द को विशेष वर्ग में न रखकर सामान्य 46 कवियों के साथ ही उनका उल्लेख शुक्ल जी ने किया। अतः सामान्य पाठक के मन में यह धारणा बन जाती है कि लक्षण

निरूपण करने वाले सभी कवियों की अपेक्षा धनानन्द का कवित्व कुछ घट कर है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि धनानन्द जैसा कवित्व तथाकथित आचार्य कवियों में भी नहीं के बराबर है।

डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने रीतिमुक्त स्वच्छंद प्रेम-कवियों में रसखान, आलम, धनानन्द, ठाकुर, बोधा और द्विजदेव को गिनाया है।¹

'हरिग्रीष्म' ने² रीति ग्रंथकारों के अतिरिक्त प्रेममार्गी श्रृंगारी कवियों में धनानन्द, नागरीदास, सीतल, बोधा, रसनिधि, ठाकुर, रामसहायदास, पजनेस और द्विजदेव को अलग से गिनाया।

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'स्वच्छंद प्रेमधारा' के भीतर धनानन्द, आलम, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव, वेनी, सेनापति, बनवारी, मुवारक, रसनिधि आर पद्मांकर को गिनाया है।³ स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि शुक्ल जी और मिश्र जी से सर्वथा भिन्न है, अन्यथा इस वर्ग में पद्मांकर के आने का सवाल ही न उठता।

डा० भगीरथ मिश्र, डा० लक्ष्मी सागर वाण्णेय, डा० वच्चनसिंह, और डा० जगदीश गुप्त ने एक दो नामों के हेरफेर से रीतिमुक्त स्वच्छंद कवियों के वर्ग में उपयुक्त कवियों को ही गिनाया है। धनानन्द, ठाकुर, बोधा और आलम का नाम सबमें है।

धनानन्द के विशेष संदर्भ में रीतिकालीन स्वच्छंद काव्यधारा पर शोध करते हुए डा० मनोहरलाल गौड़ ने रसखान, आलम, धनानन्द, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव और वस्त्री हंसराज को स्वतंत्ररूप से इस धारा के अंतर्गत स्वीकार किया है। डा० गौड़ के अनुसार : 'किन्तु निरापद भाव से जिन्हें स्वच्छंद धारा के कवि कहा जा सकता है वे तो धनानन्द, बोधा और ठाकुर ही हैं। आलम दो माने जाएं तो एक आलम भी इस काल में आ जाते हैं। उन्हें मिलाकर चार होते हैं अन्यथा तीन ही कवि इस धारा के ठहरते हैं।'

इन तीन में से भी विशिष्ट अध्ययन के लिए धनानन्द का चुनाव इस बात का प्रमाण है कि डा० गौड़ धनानन्द को सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में स्वीकार करते हैं।

डा० कृष्णचन्द्र वर्मा ने रीतिकाल के पूर्व से ही रीतिस्वच्छंद काव्यधारा के अस्तित्व को स्वीकार किया है और इसके अंतर्गत रसखान, आलम, धनानन्द, बोधा, ठाकुर और द्विजदेव का नाम गिनाया है।⁵

इन सभी वर्गीकरणों में धनानन्द को अन्य कवियों से कुछ बहुत अलग करके नहीं देखा गया है। धनानन्द के महत्व की उपेक्षा का यही क्रम 'हिंदी साहित्य

1. वाङ्मय विमर्श, पृ० 301-02. 2. हरिग्रीष्म : हिंदी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० 428, 490. 3. हिंदी साहित्य, पृ० 338, 341. 4. धनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 241. 5. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 6.

का बृहत् इतिहास' नामक महाग्रंथ में मिलता है जिसके छठे भाग का संपादन डा० नगेन्द्र ने किया है। 'सामान्य विवेचन' के अंतर्गत 'रीतिमुक्त प्रवाह' के कवियों में आलम, ठाकुर, घनानन्द और रसखान का नाम गिनाया गया है।^१ ग्रंथ के चौथे खंड 'काव्य कवि' के अंतर्गत विहारी, बेनी, कृष्णकवि, रसनिधि, नृपशंभु, नेवाज, हठी जी, रामसहाय दास, पजनेस और द्विजदेव का नाम है। घनानन्द के संबंध में कोई उल्लेख नहीं है। इस योर्जना के सातवें ग्रंथ के रूप में 'रीतिमुक्त धारा' प्रस्तावित है जो अभी लिखा नहीं गया है। घनानन्द का विशेष उल्लेख उसमें होगा, यह ठीक है। किन्तु अन्य नामों पर विचार करने पर इतना स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ भी वर्ग-विभाजन आश्वस्त करने वाला नहीं है।

आवश्यकता इस बात की है कि रीतिकाल के कवियों का अध्ययन, उनके आचार्यत्व के व्यर्थ आवरण को हटाकर किया जाय। आचार्य या रीतिग्रंथ के प्रणेता के वर्ग में अनेक ऐसे कवि हैं जिनका कवि रूप महत्वपूर्ण है जबकि आचार्यत्व की दृष्टि से उनका महत्व शून्यवत् है। दूसरी ओर स्वच्छंद धारा या रीतिमुक्त प्रवाह के अंतर्गत घनानन्द को मानकर उनके काव्य के उन महत्वपूर्ण पक्षों की उपेक्षा की गई है जो रीति परंपरा से प्रभावित हैं। अलंकार, श्रुंगारवृत्ति, अभिव्यञ्जना, उक्ति-चमत्कार आदि की पूरी रीति परंपरा उनके काव्य में पच्ची हुई है। इस संबंध में यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं है कि 'घनानन्द रीतिग्रंथ का उद्देश्य न रखते हुए भी रीतिकाव्य से अप्रभावित न थे और उनका काव्य सेनापति, देव आदि की भांति काव्य की समस्त विशेषताएँ अपनाए हुए हैं।^२

निष्कर्ष रूप में घनानन्द के काव्य का वास्तविक मूल्यांकन उनके भावपक्ष में रीतिमुक्त प्रवाह की विशेषताओं और उनके कलापक्ष में रीतिशास्त्रीय विशेषताओं के साथ ही किया जा सकता है।

1. हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास, छठा खंड, पृ० 163.

—(द्वितीय खंड), भारतीय हिंदी परिषद्, पृ० 416.

2. हिंदी साहित्य

2

घनानन्द की प्रेम-पीर

श्रृंगार-वर्णन में संयोग की अपेक्षा वियोग का प्रभाव स्थायी और अपेक्षाकृत अधिक मासिक होता है। वियोग में प्रेमानुभूति की तीव्रता के बढ़ जाने के कारण ही यहाँ तक कहा गया है कि : 'विरह प्रेम की जाग्रत गति है, और सुषुप्ति मिलन है।' इसीलिए श्रृंगारी कवियों के वियोग-वर्णन अधिक प्रभावशाली होते हैं और कभी-कभी कुछ कवियों का महस्त्र उनके वियोग-वर्णन की विशेषताओं के कारण ही रेखांकित हो जाता है। रीतिस्वच्छंद रीतिकालीन कवियों को 'प्रेम की पीर' का कवि कहा जाता है। इनमें घनानन्द की 'प्रेम की पीर' की तीव्रता अनुलनीय है। वियोग की अकथ और असह वेदना को भेलते हुए और भीतर ही भीतर घुटते हुए वियोगी का जो चित्र घनानन्द के कवित्तों में उभरा है, उसके जोड़ का कोई दूसरा वियोगी दिखाई नहीं पड़ता। शुक्ल जी ने तो यहाँ तक कहा कि : 'प्रेम की पीर ही लेकर इनकी बाणी का प्राकुर्भाव हुआ।'¹ उनके काव्य का अध्ययन करने वालों ने कहा है : 'उनका हर छंद एक दीर्घ निःश्वास है।'² घनानन्द की जिस विषम वेदना के संबंध में इस प्रकार की बातें कही गई हैं, उसके प्रति स्वयं घनानन्द का कहना है : 'जिस पीड़ा को मैं भोगता हूँ उसको जानने का दावा रात और दिन की दे सूनी घड़ियाँ ही कर सकती हैं जो मुझे तड़पते हुए देखती हैं। अगर मेरी तड़प का वर्णन किया जाय तो वास्तविकता और वर्णन में दिन-रात का (जमीन-आसमान जैसा) अंतर पड़ जाएगा।'

'जानै वैह दिन रात, बखाने तें जाय परे दिन-राति को अंतर।' इसीलिए वे अपने मौन रहने और पुकार करने में कोई अंतर नहीं मानते। संसार के लोग जिस तरह किसी आदमी के मौन रहने पर उसके हृदय की बात को नहीं सुन सकते, उसी तरह विरही की वेदना का भी वे अनुभव नहीं कर सकते, भले वह

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 320. 2. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 243.

उस पीड़ा को शब्दों में व्यक्त करने की कोशिश करे। कारण स्पष्ट है कि जो भाषा संसार के लोग समझते-बोलते हैं, विरही या प्रेमी की वेदना के लिए वह भाषा असमर्थ है। इसीलिए : 'विरही विचारन को मौन में पुकार है।' उस मौन की भाषा को समझने के लिए प्रेमी हृदय ही चाहिए जिसकी कृपा में ही कान हो, अलग नहीं।

संसार के लोग घनानन्द के प्रेम की पीड़ा इसलिए नहीं समझ सकते कि उनके सामने जिन आदर्श प्रेमियों के उदाहरण हैं, वे मौन और पतंग हैं। जल से वियुक्त होकर तुरत शरीर छोड़ देने वाला प्रेमी मौन और प्रिय दीपक के चरणों में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देने वाला प्रेमी पतंग, ये दोनों संसार दालों की दृष्टि में प्रेम के लिए जीवनोत्सर्ग करने वाले प्रेमियों के आदर्श हैं। घनानन्द को लगता है कि प्रेम की वेदना और प्रिय के रूप के तेज को वर्दाश्त कर पाने का वैर्य मौन और पतंग में नहीं होता। इसीलिए ये अपने प्राण देकर उस पीड़ा से मुक्ति पा लेते हैं। मुक्ति पा लेते हैं अतः उस पीड़ा को भैलने का अनुभव इन्हें नहीं हो पाता; ये वेदना की तीव्रता का अनुभव कैसे कर सकते हैं : 'विछुरें मिलें मौन-पतंग-दसा कहा मो जिय की गति को परसै।'

मौन और पतंग अपने संपूर्ण अस्तित्व को रूप-ज्वाला और वियोग-अग्नि में भस्म करते हैं। यहां प्रेमी चेतन है। प्रिय की निठुरता का प्रचार नहीं करना चाहता। संसार वालों के सामने यह नहीं बताना चाहता कि मेरा प्रिय निठुर और कठोर है। वह प्रेम के क्षेत्र में कायर होना भी नहीं चाहता। वह अपने एक-एक अंग से, रोम-रोम से उस पीड़ा का 'स्वाद' लेता हुआ उसे भोगता है।

अंग-अंग छाई है उद्देग उरझनि महा/सांस लैबो आली गिरहू
तैं गरुबो लगे।...

और जो सवाद घनग्रानंद विचारै कौन/विरह-विषाद-जुर
जीवी करुवौ लगे॥

विरह की उद्देग दशा से बहुत आगे की वेदना व्यजित है। उद्देग (जो चित्त में है) की उलझन आश्रय के एक-एक अंग को आच्छादित किए हुए है। सभी अंग उद्देग-दशा को मूर्त कर रहे हैं। अगली पक्षित में भारी सांस या सांस लेना दूधर हो रहा है—वाले मुहावरे को एक नई वक्ता दे दी गई है। आश्रय को सांस लेना ऐसा लग रहा है—इतना भारी पड़ रहा है जितना (सीने पर) पहाड़ उठा लेना भी नहीं लगता। गिरि के साथ 'हूँ' के द्वारा वह बात पैदा की गई है। अंतिम पक्षितयों में स्वाद संबंधी मुहावरे को ऐसी ही अर्थवत्ता दी गई है। ज्वर में जीभ को प्रिय खाद्य का स्वाद भी प्रतिकूल लगता है। कड़वापन जैसे स्थायी रूप में ज्वरग्रस्त व्यक्ति की जीभ पर चिपक जाता है। यहां आश्रय को सामान्य शारीरिक ज्वर मात्र नहीं है। उसे विरह के विषाद से उत्पन्न ज्वर है जो मानसिक

और शारीरिक दोनों स्तरों पर समान रूप में सक्रिय है। इसीलिए किसी एक स्वाद का सवाल नहीं रहा। जबर में गंध संवेदना सक्रिय रहती है, स्पर्श संवेदना सक्रिय रहती है। अन्य इंद्रियां भी अपना कार्य करती हैं। किंतु इस आश्रय को जीभ के स्वादों (या अन्य इंद्रिय/स्वाद) की कौन कहे, जीना ही कड़वा लग रहा है। जीवी (जीना ही) कड़वा लग रहा है। जबरप्रस्त व्यक्ति जीभ की कड़वाहट के कारण मुंह में पड़ी वस्तु को थूककर उस कड़वाहट से मुक्त हो जाता है। यह आश्रय तो यह भी नहीं कर सकता:

थाती लौं तिहारी प्रीति छाती पै विराज रही/हेरि-हेरि आंसुन-
समूह ढारियत है ॥

विरह का कारण प्रीति है। प्रीति आश्रय के मन में उत्पन्न हुई है। किंतु आलंबन को संबोधित करते हुए कहा गया है कि 'तिहारी प्रीति' (है मेरे मन में, किंतु तुम्हारे प्रति है और मेरे अनुकूल होने के स्थान पर प्रतिकूल भी है। इसी लिए उसे 'मेरी प्रीति' किस मुह से कहें?) मेरी छाती पर थाती की तरह विराज रही है। सांसारिक दृष्टि से चतुर लोग किसी को थाती रखने को बड़ी भारी मूर्खता कहते हैं। आश्रय स्वेच्छा से वही मूर्खता कर बैठा है। वह जानता है कि सारी वेदना इसी पराई थाती के कारण है किंतु उसे वापस करने की जिम्मेदारी इतनी बड़ी है कि थाती को पल भर के लिए भी छाती से उतारना तो दूभर है ही—जीवन को (जो किसी तरह भी जिया नहीं जा रहा है) वचाए रखना भी अनिवार्य है। श्रतः बिना उस निठुर प्रवासी के लैटे उस पीर का कोई उपचार नहीं। उस थाती को देख-देख बिसूरते रहना, यही आश्रय का जीवन होकर रह गया है।

दरस-दुखारे चैन-वंचित विचारे हारे, आंखिन के मारे आप तहीं
मंडरात हैं ।...

जानि अनखोंहीं बानि लाडिले सुजान की सु, / करि हू पयान
प्रान केरि फिरि जात हैं ॥

'दरस-दुखारे' में दुखारे की व्यंजना उभयनिष्ठ है। दर्शनों के लिए आश्रय के प्राण दुखी हैं (तीव्र उत्सुकता के बाद प्राप्त निराश का दुख) किंतु इससे बड़ा दुख यह कि यह सारी प्रक्रिया ही प्रिय-दर्शन के परिणामस्वरूप आरंभ हुई है। यही बात अगले पद 'चैन-वंचित' के लिए भी है—प्रवयम-दर्शन के बाद ही चैन चला गया। अब तो उसके होने का कोई सवाल ही नहीं। 'विचारे' और 'हारे' पदों से आश्रय के प्राणों की दुर्वह स्थिति की सूचना मिलती है। फिर एक पद है—'आंखिन के मारे', भूख के मारे या पेट के मारे—मुहावरे की व्यंजना तिशद है, किंतु यहाँ 'आंखिन के मारे', में वह भी दुहरे अर्थों वाली हो गई है। आश्रय के प्राण आलंबन की आंखों के मारे हुए हैं। स्वयं अपनी (आश्रय की)

आंखों के मारे हुए भी हैं और तीसरी ध्वनि यह कि आंखों को प्रवासी प्रिय के दर्शन की (आंखों की रूप-क्षुधा) जो हाय-हाय लगी हुई है—वह तभी मिटेगी जब प्रिय (उसकी आंखें भी) इन आंखों के सामने होंगी। इसीलिए शरीर छोड़ देने पर भी आश्रय के प्राण उसकी आंखों के आसपास ही मंडराते रहते हैं। आसपास मंडराना छोड़ कर वे प्राण बहुत हिम्मत करके प्रस्थान कर जाते हैं, लेकिन फिर उन्हें सुजान (आलंबन) की अनखौंही बानि (खिलंदंडेपन की वह आदत जो दूसरों को पीड़ित करते रहते की है) याद आ जाती है और प्राण फिर लौट आते हैं (यह सोचते हुए कि प्रिय की तो यह आदत है)। आदत में पुनः-पुनः उसी क्रिया पर लौटना व्यंग्य है। जब पुनः उसी क्रिया पर लौटना है तो स्पष्ट है कि बीच में उससे भिन्न स्थिति आ गई है। उसी स्थिति की आशा में प्राण बार-बार लौट आते हैं। उस सुजान से नाराज भी कैसे हुआ जाय, वह लाडला जो है।

प्रेमी की आशावादिता इतनी दूरगामिनी और अमिट है कि मृत्यु के बाद भी वह मिटने वाली नहीं। प्रेमी न भी रहे तो आशा उसकी नहीं मिटेगी :

‘धुरि आस की पास उसास-गरे जु परी सु मरे हूँ कहा
छुटि है।’

आशा रूपी जो पाश उसांस के गले में पड़ा हुआ है, मरने के बाद भी वह गले में ही रहेगा। इस आशावादिता का रचनात्मक पक्ष भी है। प्रेमी को विश्वास है कि प्रिय जितना निठुर और निर्देय हो, मेरी पुकार से उसे प्रभावित होना ही पड़ेगा। ऐसा नहीं हो सकता कि मेरी दशा को जानकर भी वह निर्देय बना रह सके। मृत्यु के पार आशारूपी पाश का उसांस के गले में पड़ना—करुण रस से भिन्न करुण विप्रलंभ की व्यंजनामें अत्यंत तीव्र रूप में सहायक है :

ऐसे घनआनंद गही है टेक मन मांहि/ऐरे निरदई तोहि देया
उपजाय हों॥

प्रेमी मृत्यु के मुख में जा-जाकर इसीलिए लौट आता है। उसके मन में निराशा के बदले अभिलाषाओं के अगणित अंकुर फूटते रहते हैं। अभिलाषाओं के कारण हृदय में किसी और भाव के लिए, विशेषतः अपनी स्थिति के प्रति चेतना रह ही नहीं गई है :

अभिलाखनि लाखनि भांति भरे हियरा-मधि, सांस सुहावति
ना।...

सुधि देन कही सुधि लैन चही, सुधि पाएं बिना सुधि आवति
ना॥

- पहली पंक्ति में व्यक्त मनोदशा का आभास ज़फर की इस पंक्ति से होता

है : कह दो इन हसरतों से कहीं और जा बसें,

इतनी जगह कहाँ है दिले दागदार में।

यहाँ जीवन-भर के दुखों के दागों से भरे हुए हृदय में अभिलाषा (हसरत) के लिए जगह नहीं है। घनानन्द के भीतर का वैष्णव प्रेमी अपने हृदय को प्रिय से संबद्ध अभिलाषाओं से इस कदर भरा हुआ पाता है (और रखना चाहता है) कि अपनी सांसों के लिए भी उसमें कोई जगह नहीं छोड़ पाता। घनानन्द के इस उद्गार के समक्ष : 'यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कीने में' (प्रसाद) जैसी मार्मिक उक्तियाँ भी हल्की लगती हैं। घनानन्द एक साथ ही पीड़ा और (प्रिय संबंधी अभिलाषाओं के साहचर्य के कारण) सुख के चरम क्षण का समांतर अनुभव कर रहे हैं।

यहाँ विरह की परंपरागत स्थितियों—चिता, आशा, आदि की एकड़ के बाहर की मनोदशाएँ हैं। ...वियोगी अपने प्रिय के पास संदेश या पत्र भेज कर अपनी स्थिति से प्रिय को परिचित कराने का उपाय करते हैं। यहाँ पत्र लिखने की बात सोचने पर वियोगी को लगता है कि मन में जो वेदना का समुद्र लहरा रहा है उसका कण भर ही मुख तक आ पाता है। प्रेम-संदेश के रूप में जो बातें कहनी हैं, उन्हें एक क्रम में सजाने का अवकाश ही नहीं मिलता।

फिर पत्र लिखा कैसे जाएगा :

मन ते मुख लौ नित केर बड़ो कित व्यौरि सकौ हिय की
बतिया।/घनआनन्द जीवन प्रान लखौ सु लिखी केहि भाँति परै
पतिया॥

दूसरे उपाय अपने को धीरज बंधाने के लिए किए जाएं तो वे भी गहरी नदी में कागज की नाव की तरह व्यर्थ सिद्ध होते हैं। 'भए कागद नाव उपाय सबै घनआनन्द नेह-नदी गहरै।' पीड़ा से भरा हुआ हृदय धीरज के उपायों की व्यर्थता अपने आप सिद्ध करता चलता है : 'पीर-भर्यौ जिय धीर घर नहीं, कैसे रहै जल जाल के बांधे।'

उपचारों की व्यर्थता और वियोग के बढ़ते हुए दुख में प्रिय के रूप, उसकी अनोखी अदाओं और उसके साथ प्रगाढ़ राग की अविस्मरणीय दशाओं की स्मृति वियोगी की उद्विग्नता को उस रूप में बढ़ा देती है कि संभालना कठिन हो जाता है।

घनानन्द की विरहानुभूति की असाधारण तीव्रता के कारणों पर विचार करें तो वियोग-वर्णन से ही उसके रहस्य का पता चलता है। संयोग और वियोग—तब और अब—की अनुकूलता और प्रतिकूलता की तुलना करना विरह वर्णन की रुद्धि-सी है। घनानन्द के वियोग-वर्णन की इस प्रकार की तुलना उनके संयोग की प्रकृति की ओर संकेत करती है :

'तब हार पहार से लागत है, अब आनि के बीच पहार परे।'

प्रेमी और प्रिय के बीच अब पहाड़ आ पड़े हैं। पहाड़ों की अलंध्य दूरी उनको अलग किए हुए हैं किंतु जब संयोग में दोनों साथ रहते थे तो एक-दूसरे के इतने निकट रहते थे कि बीच में (गले में पड़ा हुआ) हार पहाड़ की तरह लगता था (और उसे उतार कर ही दोनों आलिंगनबद्ध होते थे)।

इन बातों की स्मृति वियोगी के रोम-रोम में काम की न बुझने वाली जवाला जगाती रहती है :

ऐसे रस-बस क्यों न सोचै और स्वाद कहौ,/रोम-रोम जाग्योई
रहत मीनकेत है ।

यह तीव्रता 'विरह प्रेम की जाग्रत गति है, और सुषुप्ति मिलन है'—तक सीमित नहीं है। जैसी 'अन्य स्वादों की तो बात ही क्या है, विरह-विषाद ज्वर में जीना ही कड़वा लगने' वाली अनुभूति है वैसी ही यह भी है कि केवल मन प्राणों में नहीं (जोर है शारीरिक स्तर पर) रोम-रोम में मीनकेतन जाग्रत रहता है। काम के अन्य पर्याय नहीं—मीनकेत—का प्रयोग हुआ है जो उसके तीव्र प्रभाव का व्यंजक है। विजयी काम अपनी विजय-पताका फहराता हुआ आश्रय के रोम-रोम में, केवल उपस्थित नहीं, जाग्रत है। इसका कारण घनानन्द के ऐंद्रिय संयोग चित्रों में ही मिल सकता है, अन्यत नहीं।

शारीरिक स्तर पर अपने अद्भुत अनुभवों को भुला पाना वियोगी के लिए संभव नहीं होता। उसके रोम-रोम में उस परम तृप्ति का स्वाद बिंदा हुआ है। यही कारण है कि विरहानुभूति में इतनी तीव्रता, इतनी आकुलता है।

सामान्य नियम है कि जो वस्तु या व्यक्ति जितना अधिक सुख देता है उसके वियोग में उसके अभाव का दुख भी उतना ही बड़ा होता है। घनानन्द की विरहानुभूति इतनी तीव्र है कि उन्हें प्रेम की पीर का कवि ही मान लिया गया है। यह तीव्रता ही इस बात का प्रमाण उपस्थित करती है कि संयोग में उन्हें असाधारण सुख मिला था। जिस प्रिय से असाधारण सुख मिला, उसे असाधारण सौंदर्य और गुणों की राशि होना ही चाहिए। अतः घनानन्द की विरहानुभूति की तीव्रता का रहस्य उनके संयोग पक्ष के चित्रों से पाया जा सकता है जो उनके छंदों में बहुत तो नहीं मिलते पर इतने सघन और प्रगाढ़ रंगों वाले चित्र हैं कि संयोग-पक्ष की सारी विशेषताएं मुखर हो उठती हैं। बिना संयोग पक्ष के उनके वियोग वर्णन की तीव्रता को समझ पाना संभव नहीं।

3

घनानन्द का संयोग शृंगार

घनानन्द के शृंगार की विशेषता इस बात में है कि एक और जहाँ उसमें सूक्ष्म (रीतिकालीन कवियों के लिए अपरिचित) मानसिक दशाएं उदधारित हुई हैं, वहीं दूसरी और उसमें ऐंट्रियता और मांसल सौन्दर्य के प्रति सधन आत्मीयता मिलती है। दूसरे शब्दों में नारी-सौन्दर्य के प्रति पुरुष दृष्टि की आसक्ति, आलंबन की चेष्टाओं से उस आसक्ति की तीव्रता में वृद्धि, संयोग के प्रगाढ़ चित्र और इस प्रकार की चरम तृप्ति का आस्वादन, घनानन्द के शृंगार को बायबी या केवल मानसिक होने से बचाकर स्वाभाविक बना देते हैं।

यहाँ कुछ लोगों को यह लग सकता है कि घनानन्द के प्रेम की महत्ता शरीर के घरातल पर आ जाने से कुछ कम या हीन हो गई है। इन लोगों को स्मरण करना चाहिए कि शारीरिक स्तर पर प्रेम का अनुभव करने वाला ही उसके सूक्ष्म, मानसिक या आध्यात्मिक पक्ष की ओर स्वाभाविक रूप में बढ़ सकता है। इसीलिए सूफियों के यहाँ इश्कहकीकी तक पहुंचने के लिए पहले इश्कमजाजी (लौकिक या शारीरिक) की अनिवार्यता बताई गई है। तुलसी को आसक्ति की तीव्रता के उपमान के लिए 'कार्मिंहि नारि पियारि जिमि' कहना पड़ा। इस तीव्रता का अनुभव घनानन्द के काव्य में स्वाभाविक रूप में होता है। रीतिकाल के अन्य कवियों (विहारी देव आदि) में भी शारीरिक स्तर पर आकर्षण की तीव्रता दिखाई पड़ती है किन्तु घनानन्द के सौन्दर्य-चित्रों और उनके प्रति कवि (प्रेमी) की आसक्ति में जो ताजगी है, वह स्वानुभूत ही हो सकती है। विहारी की नायिकाओं में भावक के मन में सुन्त रति को जागृत करने की (आलंबनत्व की) क्षमता है, किन्तु घनानन्द के स्वानुभव की तीव्रता भावक को (उस प्रेमी के सामने) छोटा कर देती है। घनानन्द की प्रिया सार्वजनिक शृंगार का आलंबन बनाकर प्रस्तुत नहीं की गई है, उसमें प्रस्तुत करने वाले की प्रगाढ़ वैयक्तिकता स्पष्ट रूप में भलकरी है, जिसे विद्वानों ने अतिवैयक्तिकता¹ नाम दिया है।

1. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 143.

अतिवैयक्तिकना की भावुकतारूर्ण कल्पना न भी करें, तो वैयक्तिकता पर्याप्त है, जिनका अन्य रीतिकालीन कवियों में सर्वथा अभाव है। इसका कारण भी बहुत साफ है। जहाँ देव या विहारी को रूप का चित्रण करते हुए इस बात का ध्यान रखना पड़ता था कि इससे श्रोता की तबियत फड़क उठे, वहाँ घनानन्द को इस बात की कर्त्तृता विद्या के रूप से अन्य कोई प्रभावित होता है या नहीं। बल्कि इससे भी आगे बढ़कर घनानन्द अपनी प्रिया के रूप को सांसारिक चतुरों की दृष्टि से दूर ही रखना चाहते थे। विहारी जहाँ अपनी नायिका के रूप से रसिकों को प्रभावित करना चाहते थे, वहाँ घनानन्द अपनी प्रिया के रूप-सौंदर्य और उससे मिलने वाली तृप्ति में इतने तन्मय थे कि उन्हें किसी और का कोई ख्याल नहीं था। विहारी ने 'नायिका' के रूप का चित्र खींचा और घनानन्द ने 'प्रिया' के रूप का। यही कारण है कि भावक नायिका के चित्र को देखकर आश्रयत्व का अनुभव करने लगता है और 'प्रिया' का चित्र देखकर उससे प्रभावित होने पर भी अपने को उसके योग्य नहीं पाता। उसके लिए घनानन्द जैसा ही प्रेमी चाहिए जिसके सामने मीन और पतंग (दोनों आदर्श प्रेमी) तुच्छ सावित होते हैं।

प्रिया सुजान के जिस रूप ने घनानन्द को ऐसा विलक्षण प्रेमी बना दिया उस रूप की विशेषताएं भी बैसी ही हैं। यहाँ एक विशेष बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है, वह यह कि सुजान को किसी दूसरे की प्रेमिका या नर्तकी के रूप में घनानन्द ने कभी नहीं देखा। उनकी दृष्टि उसके विलक्षण सौंदर्य पर तब से लगी हुई थी जब वह वयःसंधि की अवस्था पार करने ही वाली थी। सुजान इसको न जानती हो, प्रेमी की दृष्टि तभी से बंधी हुई है :

सिसुताई-निसि सियराई बाल-स्थालन मैं/जोवन-विभाकर-
उदोत आया है रली।/गमागम-बंस भयो रस कै समागम है/आगै
ते अधिक अब लागन लगी भली/सकुच-विकच-दसा देखौं मन
आई मनो/चाहत कमल हो न कोई रूप की कली।

रूप की यह कली कमल होना चाहती है। प्रेमी की दृष्टि तभी से लगी हुई है। उससे भी पहले से वह उस रूप के प्रति समर्पित है :

आगै ते अधिक अब लागन लगी भली।

भली वह पहले भी लगती थी, अब वह आकर्षण बढ़ता जा रहा है। कली फूल बनने की प्रक्रिया में है उसके एक-एक अंग में 'ऊठ' (उठान-उभार) उसकी चाल को पग-पग पर एक ऐंठ से भर देती है :

बैस है नवेली अलवेली ऊठ अंग-अंग/भलके अनंग रंग ऐंड़त
चलत है।

अंग-अंग की यह उठान खिलते हुए यौवन की प्रक्रिया का मूर्त रूप है। प्रिया के

पूर्ण विकसित रूप को कह पाना संभव नहीं है। उसके सामने मन, वाणी, बुद्धि, आंखें सब अपनी शक्ति खो बैठते हैं। दृष्टि उस रूप तक पूरी तरह पहुँच ही नहीं पाती, फिर उसके वर्णन का सवाल ही कहां उठता है :

रूप की उभलि आँखे आनन्द पै नईनई/तैसी तरुनई तेह-ओपी
अरुनई है/उलटि अनंग रंग की तरंग अंग-अंग/भूषन-बसन भरि
आभा फैलि गई है/महारस-भीर परे लोचन अधीर तरें/आळी
ओक वरें प्यास-पीर सरसई है/कैसे घनआनंद सुजान प्यारी
छवि कहाँ/दीठि तौ चकित औ थकित मति भई है ॥

भीतर से उफनती हई रूप की राशि (उभलि) के नित्य नये रूपों में प्रकट होने में इतनी गति है कि 'यह' कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि :

भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।—विहारी ।

आंखें वहां तक पहुँचने से पहले ही महारस में डूब जाती हैं, बुद्धि थक जाती है, अतः उस रूप का वर्णन कर पाना संभव नहीं है। फिर भी सुजान के रूप-सौंदर्य के जो चित्र मिलते हैं वे उसके महत्व का आभास दिलाने की क्षमता रखते हैं।

घनानन्द द्वारा वर्णित प्रिया के रूप के संबंध में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वहां अंगों के कोरे वर्णन मात्र नहीं हैं। नखशिख का निर्वाह तो उन्होंने नहीं ही किया है। प्रिया के जिन विशिष्ट अंगों का वर्णन किया है उनमें भी गति और मुद्राओं पर विशेष ध्यान है। इससे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आश्रय के मन पर होने वाली प्रतिक्रिया का संकेत प्रत्येक रूप-चित्र में है :

नैननि बोरति रूप के भारै अचंभे भरी छतियां-उथराई ।

इस एक पंक्ति में आलंबन के रूप और यौवन की तीव्रता और उसके प्रति आश्रय के मन की प्रतिक्रिया का पूर्ण चित्र है। उथली (थोड़ी उठी हुई) छातियों (उरोजों) का उथलापन रूप के आवर्त में (आश्रय) के नेत्रों को डुबा देता है।

इस चित्र की तुलना छायावादी कवि पंत के एक चित्र से की जा सकती है :

‘इन गढ़ों में रूप के आवर्त से, धूम फिर कर। /नाव से किसके
नयन,/हैं नहीं डूबे, अटक कर, भटक कर,/भार से दबकर तरुण
सौंदर्य के।—(ग्रंथि)

प्रिया के कपोलों पर पड़ने वाले गढ़ों के आवर्त (भंवर) में देखने वालों के नेत्र-रूपी नाव का तरुण सौंदर्य के भार से दब कर डूब जाना—एक पूर्ण चित्र है।

घनानन्द के उष्युक्त चित्र में एक और विशेषता है। यहां 'देखने वाले के नेत्रों को जो भंवर अपने में डुबाती है, वह गहराई से नहीं, उथलेपन से (उरोजों का संदर्भ में ओछेपन में ही सारा सौंदर्य है) उत्पन्न होती है। विरोध का यह नमत्कार काव्यत्व को बढ़ाता है। यह पंत में नहीं है।

इसी छंद में प्रिया के कटाक्षों का वर्णन है जो काम के बाणों को भोथरा कर

देने वाले हैं :

पैने कटाढ़नि-ओज मनोज के आनन बीच विधी भुथराई।

एक दूसरे चित्र में प्रिया के ऊंचे उरोजों का उत्साह कामदेव के ओज का दलन करता है :

घनआनन्द ओपित ऊंचे उरोजनि चोज मनोज की ओज-दली ।

प्रिया की दो आंखों के लावप्प में प्रेमी की बुद्धि ऐसे खो जाती है :

दौ सरोज बीच एक बसत रसत कैसे,/लसत जु ऐसे अचरज
अविकाई है ।

दो समान सौंदर्य वाले खिले कमल पुष्पों के बीच एक भ्रमर (मन-मति बुद्धि) का धूमना, प्रेमी की दृष्टि का प्रिया के नेत्रों के सौंदर्य पर लुब्ध होने का तद्रूप चित्रण करता है ।

सुजान की पीठ, उदर, कटि, साड़ी की चुन्नटें, सब पर प्रेमी की लालसा-लिप्त दृष्टि है । पीठ के वर्णन में किसी विशिष्टता के बिना कवियों ने परंपरा का पालन मात्र किया है । घनानन्द का मन पीठ देखकर (प्रिया की) विमन हो जाता है :

मन दै मनाऊं सो न पाऊं घनआनन्द पै/मोहि यों विमन करै
एरी तेरी पीठि है ।

एक दूसरे छंद में सुजान की पीठ देखकर प्रेमी की दृष्टि और सब जगह से मुंह केर लेती है :

जान की पीठि लखे घनआनन्द आनन आन तें होत उचाटी ।

उसके उदर के सौंदर्य को देखकर सौंदर्य के अन्य उपकरणों के गर्व प्रोले की तरह गलने लगते हैं :

ताकें तो उदर घनानन्द सुजान प्यारी,/ओछी उपमान को गूर
ओरे लौ गरे ।

सौंदर्य के गर्व और यौवन के गूर से अंग-अंग में ऐंठ तो है ही, नाक चढ़ाकर प्रिया का डोलना प्राणों में (आश्रय के) सीधे प्रवेश कर जाता है :

‘पैठत प्रान खरी अनखीली सु नाक चढ़ाई डोलत टैठी ।’

प्रिया की कलाई चूड़ियों से भरी हुई है । उन चूड़ीयुक्त हाथों में ही प्रेमी का मन पड़ जाता है :

‘चारु चुरीन चितै घनआनन्द चित्त सुजान के पानि भयौ है ।’

उसकी भौंहें एक गति में नृत्य के भावों के भेद बता देती है :

नाचहि भाव के भेद बतावत है घनआनन्द भौंह-चलायन ।

उसके गले की एक गति प्रेमी के प्राणों को रस से भिजा देती है :

सरस सुजान घनआनन्द भिजावै प्रान/गरबीली ग्रीवा जब ग्रानि
मान पै ढूरे ॥

उसके स्वर के बाण बिना कमान के छूटने पर भी प्रेमी को इस तरह विद्ध कर देते हैं कि उसका शरीर लोटने लगता है :

सांच के सान घरे सुर-बान, पै छटे बिना ही कमान सों जोटे ।...

प्रान सुजान के गान बिधे घट लोटें परे, लगि तान किचोटे ॥

प्रिया के पांवों के सौंदर्य पर प्रेमी की दृष्टि का टिका रह जाना, दृष्टि के साथ मन का वहाँ अटक जाना इस तरह वर्णित है कि एक ही छंद से घनानन्द के रूप-वर्णन की ऐंट्रियता (सेंसुअल्सनेस) प्रकट हो जाती है :

रति सांचे ढरी अछवाइ भरी पिंडुरीन गुराइये पेखि पगै । / छबि

धूमि घूरै न मुरै मुरवान सों लोभी खरो रस झूमिखरै । / घन-

आनंद एङ्डिनि आनि भिड़ै तरवानि तरे तें भरै न डै । मन मेरो

महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ॥

प्रेमी का कथन है कि मेरा मन तुम्हारी पिंडलियों की गुराइ और रति के सांचे में ढली हुई उनकी सुधड़ता देखकर उसी में लिप्त हो गया। वहाँ से नीचे उतरा तो वह लोभी एड़ी के बेरे में मुड़ने को तैयार न हुआ। फिर एड़ियों पर आया और वहाँ से तलवों के नीचे सरक कर स्थिर हो गया। मेरा मन तुम्हारे पैरों से लगकर भेरे हाथ ही नहीं लगता। मुहावरे की अदा के साथ पिंडलियों के उभार पर टिकने वाले मन की लालसा दर्शनीय है। पिंडलियों का वर्णन पश्चिमी साहित्य में तो बहुत अधिक है, भारतीय साहित्य में वह नहीं के बराबर है। नखशिख वाले कवियों ने भी उस पर बहुत ध्यान नहीं दिया है।

प्रिया की उत्साहपूर्वक चुनकर पहनी गई साड़ी (अत्यंत गोरे शरीर पर सांवली-काली या नीली) की फबन पर प्रेमी की लालसालिप्त दृष्टि साकार हो उठती है :

‘कैसी फबी घनआनन्द चोपनि सौ पहिरी चुनि सांवरी सारी’

चोली वर्णन में तो चोली की कढ़ाई की रेखाओं का प्रिया के उरोजों में अंकित हो जाना कवि के अनुभवों की गहराई का प्रमाण है :

देखि जियो न छिपौ घनआनन्द कोंवरे अंग सुजान वधू के ।

चोली चुनावट चीन्हें चुभें चपि होत उजागर दाग उतू के ॥

इस प्रकार के बहुत सारे सौंदर्य चित्र हैं जिनमें प्रेमी की लालसा की उपस्थिति देखी जा सकती है। इसी उपस्थिति या आत्मीयता के कारण घनानन्द के चित्र न तो नकली लगते हैं न बाजारू और न दूसरे नायक-नायिकाओं के लिए रचित।

संपूर्ण शरीर की शोभा की व्यंजना ऐसे ही अनेक छंदों में अद्भुत प्रभावोत्पादकता के साथ हुई है। प्रिया की लाज में लिपटी अनेक भेदों और भावों से भरी हुई चितवन उसके विलक्षण नेत्रों के बांकपन में प्रकट होती है। उसकी बातों से रस निचुड़ता है। उसके मुड़ जाने में, उसकी गति में अनंग के अनेक रंग

एक साथ ही प्रकट हो जाते हैं :

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी/लसति ललित लोल-
चख-तिरछानि मैं/छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,/रस
निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं/दसन-दमक फैलि हिये मोती-
माल होति, /पिय साँ लड़कि प्रेम-पगी बतरानि मैं। /आनंद
की निधि जगमगति छबीली बाल,/अंगनि अनंग रंग ढुरि मुरि
जानि मैं।

उसकी एक-एक गति में काम को उद्दीप्त करने वाली छटाएं प्रकट हो रही हैं। इस छंद में 'दसन-दमक फैलि हिये मोती-माल होति' की मूर्ति छवि अन्यत्र दुर्लभ है। प्रिय के साथ प्रिया लाड़ की बात करती है तो उसके मोती के समान दांतों की छवि हृदय में मोती की माला हो जाती है। हंसी की उज्ज्वलता का वक्षस्थल पर मोती की माला के रूप में फैल जाना उज्ज्वल हास का मूर्तीकरण है। इसका एक अन्य संकेत है जो और भी काव्यात्मक है। प्रिया के हास का उज्ज्वलता प्रेमी (आश्रय) के हृदय में (और पर) मुक्तामाला की तरह सज जाती है।

इसी तरह का जीवंत चित्र प्रिया के बोलने में छवि के फूलों की वर्षा होने का है :

हंसि बोलन में छवि फूलन की बरखा उर-ऊपर जाति है हूँ।

प्रिया हंस कर बोलती है। हंसी की उज्ज्वलता मानो साकार होकर उज्ज्वल फूलों की तरह उसके वक्षस्थल पर बरस जाती है। (हंसने से फूल झड़ना, इस मुहावरे का अत्यंत परिष्कृत और कलात्मक रूप है)। दूसरा संकेत आलंबन (प्रिया) की उज्ज्वल हंसी से प्रिय (आश्रय) के हृदय पर फूलों की वर्षा हो जाने का है। प्रिया हंसकर बोलती है, प्रिय को ऐसा लगता है कि उसके हृदय में फूलों की वर्षा हो रही है। ...इसी छंद में अंतिम पंक्ति है :

अंग अंग तरंग उठे दुति की, परिहै मनो रूप अंदै धर चै ।

प्रिया के अंग-अंग से द्युति की तरंगे उठ रही हैं। द्युति की ये तरंगे (विद्युत तरंगों की भाँति) प्रेमी के मन-प्राणों को खींच लेती हैं। प्रिया के अंगों में रूप इस तरह भरा है कि लगता है अभी धरती पर टपक पड़ेगा। लबालब भरे पात्र से जैसे रस की बूँदें अब गिरीं कि तब गिरीं।

प्रेमी की दृष्टि प्रेमिका के शरीर को वैसे ही प्रसन्न और पुलकित कर देती है जैसे कोई आदमी प्यार से किसी लता को हिलाकर छोड़ दे। यहां घनानन्द लता को झकोरे से लहराकर महक से भरी हुई देखते हैं :

लाड़-लसी लहकै-महकै अंग रूप-लता लगि दीठि-झकोर।

दृष्टि (आश्रय की) के झकोरे से प्रिया की पूरी देह लता हिल जाती है। हिलने से वे कलियां (सौंदर्य और सुगंध की) जो बंद थीं, खिल जाती हैं, उनकी सुगंध

विखरने लगती है। शरीर के आकर्षण का, प्रणय-दृष्टि पाकर बढ़ जाने का, यह अत्यंत भावपूर्ण और कलात्मक अंकन है।

सौंदर्य के इन चित्रों से घनानन्द की प्रेमिका का पूरा वर्णन हो गया हो ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। वे तो यह मानते हैं कि प्रिया के अनुपम रूप के नगर तक पहुंचने में प्रेमी के नेत्रों को एक से एक बड़ी बाधाएं पार करनी पड़ती हैं :

कोऽन देखै न काहू दिखावत, आपनो आन न जान अमैङ्डे ।

बैठि सभा-मधि न्यारे रहैं पुनि रोकत चेटक लौं दृग-पैङ्डे ।/कौन

पत्याय कहैं घनग्रानन्द हैं सब सूधे-सयान सो ऐङ्डे ।/रूप अनुपम

को पुर दूरि, सु बावरे नैनन के मग बैङ्डे ।

एक तो रूप का वह नगर दूर, दूसरे प्रेमी के नेत्रों की हालत यह कि वे बावरे हैं, रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा है, मार्ग में अवरोध हैं और कोई सहायता करने वाला नहीं। संसार के दूसरे लोग क्या सहायता करेंगे, उनके पास न वह समझ है, न दृष्टि। अतः प्रिया के रूप का वर्णन संभव नहीं है।

रूप की अवर्णन्ता के लिए कवि ने एक ऐसा जीवंत और पूर्ण चित्र खींचा है कि उसकी समानता नहीं हो सकती :

पानिप अपार घनग्रानन्द उक्ति ओछी/जतन-जुगति जोन्ह कौन

पै नपति है ।

उस रूप का वर्णन कर पाना बैसा ही है जैसा ज्योत्स्ना को तौलना। कवि के पास उक्ति है (तुलसीवाला 'अरथ आखर बल') जो ओछी है, और दूसरी ओर चांदनी की तरह खिला हुआ वह अपार रूप-पानिप (रूप का पानी, जैसे मोती का)। भला किसी भी उपाय से किसी भी आदमी में ज्योत्स्ना को मापने की शक्ति है? रूप के संबंध में एक से एक बातें हैं, किंतु उसकी अवर्णन्ता के लिए इससे अच्छी उक्ति का होना कठिन है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि घनानन्द की प्रिया का यह असाधारण रूप-सौंदर्य ही है जिसका अभाव उनके विरह को इतना तीव्र और आवेगमय बना देता है। रूप-सौंदर्य का उपर्युक्त चित्रण रीति-परंपरा से मुक्त रहने वाले या यों कहें कि उस परंपरा के प्रति अज्ञान रखने वाले कवि के लिए संभव नहीं होता। इस संबंध में डा० भगीरथ मिश्र का यह कथन महत्वपूर्ण है कि 'घनानन्द ने रूप और भाव का चित्रण बिल्कुल रीतिकाव्य की पद्धति पर किया है, जो बड़ा ही मार्मिक है और ऐसे चित्रण को हम केवल अलौकिक सौंदर्य का भक्त-सुलभ चित्रण कह कर टाल नहीं सकते'।¹

1. डा० भगीरथ मिश्र : हिंदी रीतिकाव्य, पृ० 124.

4

पूर्वराग की स्थिति

वियोग वर्णन के आवेगपूर्ण छंदों की बहुलता के नाते घनानन्द के विरह-वर्णन को प्रायः प्रवास विरह के रूप में ही देखा गया है। मुक्तक की प्रकृति भी किसी योजना की अनिवार्यता नहीं मानती और प्रवास-विरह की गंभीरता असंदिग्ध होती है। अतः घनानन्द की प्रेम-पीर की अभिव्यक्ति के लिए प्रवासजन्य कारण का आचित्य ही सामान्यतः स्वीकृत है। किंतु विरहानुभूति को व्यक्त करने वाले छंदों में ऐसे अनेक छंद भी हैं जो प्रवास जैसी किसी दूरी के अस्तित्व को स्पष्ट रूप में अस्वीकार करते हैं। इस दशा में उन छंदों की स्थिति पूर्वराग के संदर्भ में ही मुख्य होती है। दूसरी ओर रूप के प्रति जो लालसालिप्त प्रगाढ़ राग सौंदर्य वर्णन वाले छंदों में व्यक्त हुआ है, वह प्रिया की प्राप्ति में विलंब को सहन करने वाला नहीं है। जब विलंब असह्य होता है तभी विरह की अनुभूति होती है और वही विरहानुभूति पूर्वराग में अभिव्यक्ति पाती है। प्रिया के अंगों के प्रति प्रेमी के नेत्रों और मन के आतुर भाव का संकेत रूप-वर्णन के संदर्भ में देखा जा चुका है। इस प्रकार की आतुरता ही पूर्वराग को प्रगाढ़ करती है जो घनानन्द के अनेक छंदों में मुख्य है। इस प्रकार पूर्वराग का आरंभ वहीं हो जाता है जहाँ प्रेमी का मन प्रिया के रूप को देखकर अन्य स्थलों से उचाट हो जाता है :

जान की पीठि लखै घनआनन्द आनन आनते होति उचाटी ।
अथवा उसकी पिङ्लियों का मांसल सौंदर्य देखता हुआ प्रेमी का मन उसके पांवों से लग जाता है कि प्रेमी के हाथ ही नहीं आता :

मन भेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लगि न हथ लगै ।
यह ललक भला कितनी देर बदाश्त करती ? उच्चर विलंब होना ही है, अतः पूर्वराग की स्थिति की पूर्ण संभावना है ।

प्रिया को देख लेने से प्रेमी अपने को सब कुछ से अलग करके केवल एक आशा में जी रहा है कि उसको प्रिया के पांवों में मेंहदी की तरह लग जाने का

अवसर मिल जाय :

साखा कुल टूटै है रंगीली अभिलाषा भरि,/परि द्वै पखान
बीच बसनि धनी सहै ।/सोच सूखी इतै भान आनि कै सलिल
बूझै,/धुरि जाय चायनि ही हाय गति को कहै ।/तऊ दुखदाई
देखौ छिदति सलाकनि सों,/प्रेम की परख देया कठिन महा
अहै ।/प्रिय-मनसा लौं वारी मिहदी अनंदघन/एरी जान प्यारी
नेकु पायनि लग्ये चहै ।

उपर्युक्त छंद रीतिकालीन शिलष्ट शब्द-योजना का एक अद्भुत नमूना है किंतु प्रेमी की लालसा का जो मूर्त स्वरूप खड़ा होता है वह शाब्दिक खेल को छोड़कर बहुत भीतर जानेवाले को दिखाई पड़ता है। आश्रय की मनसा (आलंबन का साहचर्य पाने की उद्दीप्त लालसा) और मेहदी दोनों का (आलंबन के) पांवों से लगने के लिए अपने-अपने कुल को छोड़कर अपार कष्ट सहते हुए प्रेम की परख में खरा उत्तरना इस छंद का कथ्य है जो दूती-कथन के कारण एक नाटकीय भेगिमा प्राप्त करता है। अंत तक पहुंचते-पहुंचते वात सिर्फ मेहदी तक ही रह जाती है कि वही आपके पांवों से लगने के लिए इतने कष्ट सहन कर रही है। उपमान के रूप में प्रिय (आश्रय) की कामना का उल्लेख है जो मुख्य रूप से व्यंग्य है। दूती कहती है कि यह मेहदी आपके ऊपर ऐसी आसक्त है, आपके पांवों से पल भर लग जाने के लिए इतने असहा कष्ट सहन करती आ रही है, जैसे प्रिय (आश्रय) की मनोकामना। मेहदी की कष्ट-कथा आश्रय की कष्ट-कथा के रूप में अत्यंत प्रभावी हो जाती है :

मृदु मूरति लाड दुलार भी अंग-अंग विराजति रंग मई ।/
धनानन्द जोबन माती दसा छब्बि ताकत ही मति छाक छई ।/बसि
प्रान सलोनी सुजान रही, चित पै हित हेरनि छाप दई ।/वह रूप
की रासि लखी, तव तें सुखि आंखिनि कै हटतार भई ।'

अपूर्व रूप और यौवन के ऐश्वर्य से संपन्न आलंबन (सुजान) और प्रथम दृष्टि में ही अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाले आश्रय की आंखों के कभी न टूटने वाले तार (हटतार) का मार्मिक वर्णन है। ध्यातंव्य है कि आंखों का तार उस दृश्यवस्तु से बंध जाता है जो सामने होती है। यहां आलंबन सामने नहीं है। आश्रय की आंखों ने उसे एक बार ही देखा है। उसके बाद से ही वह रूपराशि अदृश्य है। फिर भी आश्रय की आंखों का तार (स्मृति के माध्यम से) उसी रूप के साथ बंधा हुआ है। दूसरी पंक्ति में एक पद आता है : 'जोबनमाती दसा' यौवन के मद से उन्मत्त होने की जो दशा है (जिसमें 'शूकरी चाप्सरायत') उस दशा में आलंबन को आश्रय की आंखों ने देखा है। उस छवि (जोबनमाती दशा में) को देखकर आश्रय की बुद्धि ऐसी छक्की (छक्कने में ठगे जाने और पूर्ण तृप्त होने, दोनों के भाव एक साथ हैं) कि अब प्राणों में सिर्फ वही सलोनी (लवण

युक्त होने के नाते रूपतृष्णा बढ़ती हुई) सुजान बसी हुई है और प्राणों से भिन्न चित्त की स्थिति यह है कि उस पर उस प्रिया (आलंबन) के देखने की मुद्रा की छाप सदा के लिए अकित हो गई है। इस छंद में 'सखि' संबोधन है किन्तु आश्रय के रूप में पुरुष का स्वीकरण प्रसंग को अधिक प्राणवान् बनाता है। दृती को पुरुष भी सखी कह कर संबोधित कर ही सकता है।

ये आंखें लाखों अभिलाषाओं का संचय करती रहती हैं और विचित्र बाव-लापन इनमें आ गया है :

घनग्रानन्द मीत सुजान लखें अभिलाखनि लाखनि भाँति रई ।

मुख-माघुरी पान कौं आतुर पै अंखियां दुखियां कित भोरी भई ।

जब से वह प्रिय आंखों में बस गया है, तब से सारा जगत् सूना हो गया है :

जब ते सुजान प्रान ध्यारे पुतरीनि-तारे, / आंखिन वसे है सब सूने
जग जोहियै ।

एक विलक्षण प्रयोग। 'आंखों के तारे' मुहावरा है जिसे कवि ने 'पुतलियों के तारे' के रूप में प्रयुक्त किया है। जैसे अंग्रेजी का मुहावरा 'इन द हार्ट आफ हिज हार्ट' (हृदय के हृदय में)। आश्रय का कहना है कि जब से है प्रिय (पुतलियों के तारे) तुम मेरी आंखों में बस गए हो, तबसे यह सारा जगत् (मेरे लिए) सूना हो गया है अर्थात् कोई दृश्य ऐसा नहीं है जो मेरा ध्यान खींच सके।

घनानन्द की ही एक अन्य उक्ति से तुलनीय :

उवरो जग छाय रहे घनग्रानन्द चातिक लौं तकिए अब तौ ।

ओछी बड़ी इतराति, लगी मुह, नौको अधाति न आंखि निपेटी ।

दूर-दूर से देख लेना प्रेमी को और अधिक अतृप्त करता है। साथ ही एक कठिनाई यह है कि प्रिया अकेले में नहीं मिलती। अकेले में वह मिले कैसे, उसके आसपास तो बहुत लोग हैं। अकेले में प्रिया को न प्राप्त कर सकने के कारण प्रेमी अपनी ही रीझ पर खींकता है :

कित जाऊं लै जान-सजीवन प्रान कों, आन के लेखें न छाहौं
विजौं । इहि साल दहौं नित ही दुख-ज्वाल', रु सोचनि लोचन
वारि भिजौं । दुरि आय न एहुं इकौसे मिलौं घनग्रानन्द यौं
अनखानि छिजौं । डर डीठिके नीठि न देखि सकौं सुअनो-
खिये रीझि पै रीझि लिजौं ।

प्रवास विरह के समान ही वियोग की सभी दशाओं को पूर्वराग में दिखाने की अस्वाभाविक रुद्धि घनानन्द की रुचि को स्वीकार नहीं हो सकती थी, अतः लालसा और उसकी तृप्ति में विलंब से होने वाला कष्ट ही यहां पूर्वराग में वर्णित है।

5

संयोग शृंगार के प्रगाढ़ चित्र

घनानन्द का काव्य प्रबंध नहीं है और न उन्हें किसी प्रकार की काव्यरुद्धि का अंधानुकरण पसंद है, इसलिए घटना के रूप में संयोग अथवा मिलत के वर्णन का सवाल नहीं उठता, किन्तु प्रिया के उत्तेजक सौंदर्य, उसकी मुद्राओं, अंगभंगी, और उनके प्रति प्रेमी की आत्मर पिपासा की अभिव्यक्ति घनानन्द अनेक छंदों में विलक्षण रूप में करते हैं। प्रिया की सलज्जता प्रेमी के हृदय पर क्या गजब ढाती है :

धूधट काढ़ि जो लाज सकेन्ति लाजहि लाजति है बिन काजनि ।...

देखत देखत दीसि परै नहि यों बरसै घन आनंद लाजनि ॥

यह धूधट लज्जा के अभिनय के रूप में प्रखर उद्दीपन का काम करता है। यह 'बिन काजनि' (बिना जरूरत) लाज है, अर्थात् लाज का अभिनय है।

प्रिया रूप की लता है जो प्रेमी की दृष्टि के झक्कोरे से हिलहिल कर लहकने और महकने लगती है। प्रेमी के हृदय का मंथन उसमें उत्पन्न रीफि कर रही है और उस पर प्रिया की फैली हुई बांहों की आलिंगन मुद्रा प्रेमी को मूढ़ बना देती है :

लाड़लसी लहकै महकै अंग रूप-लता लगि दीठि-झक्कोरै ।...

रीफि बिलोएई डारति है हिय, सोहति टोहति प्यारी अकौरै ।

प्रिया की वाणी का तीखा आसव और उसके अंगों की मुद्राएं प्रेमी के रोम-रोम में काम को जगाते रहते हैं :

कंठ-कांच-धटी तें बचन चोखो आसव लै, / अधर पियालै पूरि

राखति सहेत हैं । / रूप मतवारी घनआनन्द सुजान प्यारी, /

काननि हैं प्राननि पिवाय पीवै चेत हैं । / छकेई रहत रैन द्यौस

प्रेम प्यास आस, / कीनी नेम घरम कहानी उपनेत है । / ऐसे रस-

बस क्यों न सोवै और स्वाद कहो/रोम-रोम जाग्योई रहत मीन-
केत है ॥

और जब रोम-रोम में काम जगा हो तो दूसरे स्वाद अपने आप सो जाएंगे । किर वह प्रिया जहां कातों के मार्ग से स्वर-संगीत का आसव पिलाती है उसके साथ ही प्रेमी के चेत (चेतना) को पी जाती है । उसकी चेतना विलुप्त हो जाती है । पीना सांप आदमी की सांस को पीता है और साथ ही उसे अपना जहर पिलाता जाता है ।

इस तरह अवश प्रेमी का मन चाहता है :

घन आनन्द यों बहुभांतिनि हों मुखदान मुजान समीप बसौं ।/
हित-चायति चैत्र चित चाहत नै नित पायन ऊपर सीस घसौं ॥
कामना की तीव्रता का यह हाल है, उधर प्रिया अनमनापन
प्रेमी को और रिभाता है :

तेरी अनमाननि ही मेरे मन मानि रही,/लोचन निहारै हेरि
सोंहें न निहरिबो ।/कोरि कोरि आदर को करत निरादर है,/

सुधा तें मधुर महा झुकि फिर्फिकारिबो ।/जीवन की ज्यारी
घनआनन्द मुजान प्यारी,/जीब-जीति लाही लहे तेरे हठ
हारिबो ।/रुखी रुखी बातनि हुं सरसै सनेह सुठि,/हिये तें टरे
न ये अनखि कर टारिबो ॥

प्रिय की याचना पर प्रेमिका अनमनी हो जाती है । उसका यह अनमनापन ही प्रेमी के मन को मनाता है । प्रिया की झिड़की करोड़ों प्रकार से मिलने वाले आदर का निरादर करती है । प्रिया के हठ के आगे हारना प्रेमी के लिए जीवन का सबसे बड़ा लाभ है । प्रिया की रुखी बातों से स्नेह टपकता है और प्रिया का (प्रेमी के बड़े हुए) हाथों को झुंझलाकर हटा देना, यह तो कभी हृदय से हटता ही नहीं :

कहे देत चित चीकनो नई रुखाई नैन ॥—बिहारी ।

बिहारी के उक्त 'विरोध' से तुलना करने पर घनानन्द के उपर्युक्त चित्र का मूल्य समझ में आता है ।

प्रिया के झुंझलाकर प्रेमी के बढ़ते हुए हाथों के हटा देने को बांकपन का आसवादन करना प्रगाढ़ राग में लिप्त प्रेमी का ही कार्य हो सकता है ।

उधर प्रिया के अपार रूप में डूबता हुआ मन कोई अवलंब नहीं पाता, डूबता ही जाता है :

पानिप अनूप रूप जल को निहारि मन,/गयौ हो बिहार करिबे
को चाय ढौरिकै ।/पर्यौ जाय रंगनि की तरल तरंगनि में,/अति
ही अपार ताहि कैसें सकै तारिकै ।/धीर-तीर सूझत कहुं न घन-
आनन्द यों,/बिबस विचारो थक्यौ बीच ही हहरि कै ।/लेस न

सम्भार गहि केसनि मगन भयों, /बूड़िवें बच्यो को सिवार को
पकरि कै ॥

शैवाल को पकड़कर कहीं डूबने से कोई बचा है ? यहाँ शैवाल को परंपरागत उपमान के रूप में ग्रहण करने में असमर्थ रसिक के लिए इस छंद का चमत्कार बहुत आकर्षक नहीं होगा । किन्तु इस प्रकार के स्थिर चित्र घनानन्द ने बहुत कम रचे हैं । उनकी विवेषतां गति-चित्रों में प्रकट होती है ।

वह भोली-भाली प्रिया अत्यंत सुजान भी है । प्राणों को (प्रेमी के) अत्यंत तीव्रता के साथ अपनी ओर खींचती है । उसकी हँसी प्रेमी के गले में फंदे की तरह फंस जाती है :

रूप-गुन-ऐठी सु अमैठी उर पैठी वैठी, /लाड़िनि निरैठी, मति
बोलनि हरै हरी । /जोबन-गहेली अजबेली अति ही नवेली, /हेली
हौं सुरति बौरी आंचर टरैं टरी । /परम सुजान भोरी जातनि
छकाए प्रान, /भावति न आन वैई हियरा अरै अरी । /फंद सी
हँसनि घनआनन्द दृगति गरै, /मुख सुखकंद मंद उघरि परैं
परी ।

उसकी भोली वातों में छका हुआ प्रेमी उसके मुख के किंचित् खुलने से ही अपने गले में फंदा पड़ा हुआ महसूस करता है । उसके आंचल के जरा-सा टलने (विसकने-टरै) से ही प्रेमी की सुधवृद्ध बाली होकर उसे छोड़ जाती है ।

तीव्र उद्दीपन चेष्टाओं और हावों से युक्त आलंबन के आंचल सरकाने या साभिप्राय हँसने की—कुल मिलाकर उसके उस समय के संपूर्ण अस्तित्व की कुंजी एक पद में है—सुरति बौरी । यहाँ 'हाव' की परिभाषा ध्यातव्य है, 'संभोगेच्छा प्रकाशक भ्रू नेत्रादि विकार' ही हाव कहलाते हैं । इस नायिका में हाव और हेला से भी कुछ गूढ़तर संकेत देने के लिए कवि कहता है कि वह सुरति बौरी हो गई है । एक अन्य छंद में जोबनमाती पद आया है, यहाँ उससे भी आगे की स्थिति है । अगली पंक्ति में एक अन्य गूढ़ संकेत है । ऐसे आक्रामक सौंदर्य बाली प्रिया भोली हो तो आश्रय को उसके भोलेपन से सुख मिलना स्वाभाविक है किन्तु वह भोलापन उद्दीपन के रूप में नायिका की ओर से प्रयुक्त नहीं होगा । दूसरी ओर यदि नायिका चतुर है और अतिशय चातुर्य के कारण नाटकीय मुग्धता (अबोधता) वारण किए हुए हैं तो वह भोलापन कुछ और ही प्रभाव डालने वाला होगा । यहाँ नायिका 'परम सुजान' है और उसी अनुपात में 'भोली वातों' करती है जिससे आश्रय के प्राणों को छकाए डालती है (पूर्ण तृप्ति के साथ ही आश्चर्य विमूढ़ करने का संकेत भी है) । नायिका सुजान ही नहीं, परम सुजान है अतः वह जब भोलेपन का अभिनय करती है तो वह सहज भोलेपन से अधिक प्रभावी होता है । यह भोलापन 'हाव' के अंतर्गत है लेकिन इस कौशल के साथ आता है कि सहज लगता है । उधर प्रिया के कटाक्ष मतवाले होकर धूम मचाए हुए हैं :

रूप मतवारी घन आनंद सुजान प्यारी, / धूमरे कटाछि धूम करै
कौन पै घरै ।

‘जोबनमाती’ और ‘सुरति बौरी’ के समान ही यहां ‘रूप मतवारी’ का प्रयोग हुआ है। अपने रूप से (उसके प्रभाव की तीव्रता से) उन्मत्त है, ऐसी प्रिया प्रेमी को किस सीमा तक उन्मत्त करती है, इसका अनुमान रसिक जन ही कर सकते हैं। ‘रूप मतवारी’ की, नायिका के आश्रयत्व की स्थिति में भी गूढ़ व्यंजना है। वह नायिका (आश्रय) नायक (आलंबन) के रूप के कारण बावली हो रही है। उधर उसके रूप का जादू है ही—ये दोनों मिलकर नायक (आश्रय) के हृदय में स्थित रत्तिभाव वो अत्यंत तीव्रता से जाग्रत करते हैं।

उसकी भौंहों का चांचल्य प्रेमी को अनेक भावों के भेद बता देता है। वे विशाल नेत्र कटाक्ष की कलाओं में पंडित हैं :

वंक विसाल रंगीले रसाल छबीले कटाछि-कलानि में पंडित ।

आलस के कारण प्रिया के मुख से निकलती हुई अधकही बातें प्रेमी को बेकाबू कर देती हैं :

श्रंगराति जंभाति, लसैं सब अंग अनंगर्हि अंग दिये भलकै । /

अधरानि में आधिय बात धरै लड़कानि की आनि परी छलकै ॥'

अंगड़ाई, जंभाई और अन्य चेष्टाओं का मूर्त रूप इस छंद में दृश्य है। साथ ही इन चेष्टाओं से मुक्त उसके (नायिका के) संपूर्ण शरीर की अद्भुत कांति के लिए सहज भाव से कहा गया है कि उसके अंग अनंग को अंग देते हुए भलकर रहे हैं। अनंग को अंग देने में दुहरा संकेत यह है कि एक तो वह इतनी सुंदर हो उठी है कि काम उसके अंगों में मूर्त हो रहा है (जो सदा अमूर्त रहता है)। दूसरा यह कि उसके सर्वांग में भलकने वाले काम का उद्दीपन आश्रय के लिए असह्य हो रहा है। उस प्रिया की कभी हारने का अवसर नहीं मिला। उसका रूप अत्यंत तेज खिलाड़ी है। (जुआ खेलने की प्रथा है दीवाली पर, इसलिए) वह रोज दीवाली का समां बांधे रहता है :

रूप-खिलार दिवारी कियें नित जोबन छाकि न सूचे निहारै । /

नैननि सैन छलै चित सों चित-चाव भर्यो निज दाव बिचारै । /

जीति ही को चसको घनआनन्द चेटक जान सयान बिसारै । /

जीव बिचारो पर्यो अति सोचनि हारि रह्यो सु कहा फिर हारै ।

प्रेमिका के रूप को जीतने की आदत है और प्रेमी के प्राण सोच रहे हैं कि अपना सर्वस्व तो हार चुके, अब क्या हारें? ... प्रेमी की आंखें हैं कि प्रिया के रूप को विशेषतः उसके नेत्रों को देखकर वहां से लौटती ही नहीं :

तेरी सों ए री सुजान तो आंखिन देखि, ये आंखि न आवति मोपै ॥

इस प्रकार प्रिया की उद्दीपक शोभा और उसके अंगों की मुद्राओं के प्रति प्रेमी का मन, उसकी आंखें, उसके प्राण सब कुछ समर्पित हैं। अब वह अपने को पूरी तरह विवश पाता है।

ऐसे में एक अवसर आता है, प्रिया के साहचर्य का। होली के बहाने वह उसके अंगों को अपने अभीष्ट रूप में प्राप्त करने का अवसर पा जाता है :

गोरी बाल थोरी बैस, लाल पै गुलाल मूठि,/तानि कै चपल
चली आनंद-उठान सों।/बांये पानि धूधट की गहनि चहनि-
ओटि,/चोटनि करति प्रति तीखे नैन-बान सों।/कोटि दामिनीन
के दलनि दलमलि पाय/दाय जीति आय झुंड मिली है सयान
सों।/मीड़िवे के लेखे कर मींड़िवोई हाथ लग्यो/सो न लगी हाथ
रहौ सकुचि सखान सों ॥

उसकी सारी चेष्टाओं से उद्दीप्त प्रेमी उसे पकड़ लेने को भपट्टा है। इस प्रक्रिया में उसके मन की अभिलाषा अनेक रूपों में भरी हुई है। प्रिया को पकड़-कर उसके कपोलों में गुलाल मलने से लेकर उसके अंगों के मर्दन तक की इच्छा। उधर वह है कि हाथ में आती-आती निकल गई। दूसरी पंक्ति में हाव-योजना विचित्र है। प्रिया हाथ से छूट गई। प्रेमी के लिए 'मलने' के नाम पर केवल 'हाथ मलना' ही हाथ लगा। 'मीड़िवे के लेखे' में प्रेमी के हृदय की सारी अतृप्त लालसा उड़ेल दी गई है। हाथ मलने का मूहावरा अलग है। इस तरह के चित्र कितने प्रगाढ़ राग से चित्त को रंजित करते हैं, कहने की आवश्यकता नहीं।

एक दूसरा अवसर है। प्रेमी प्रिया को पकड़ लेने की ताक में है। लेकिन उसके दोब व्यर्थ हो जाते हैं क्योंकि वह पिया के रूप का छक कर पान करने के कारण होश में नहीं है। उधर प्रिया है, इतनी हाव-भाव युक्त और चचल कि उसे अपनी छाया भी नहीं छूने देती। प्रिया के अपनी पकड़ में न आने पर असफल प्रेमी दुखी या निराश होने के स्थान पर और भी अधिक मुग्ध हो कर अपने हौसले सजाने लगता है :

दांव तक रस रूप छकै विश्कै गति पै अति चोपनि धावै।/
चौंकि चलै, ठिठ छैल छलै, सु छबीली छराय लौ छांह न
छवावै।/धूधट ओट चितै धन-आनंद चोट चितै अंगुठाहि
दिखावै।/भावती गों बस ह्वै रसिया हिय हौसनि सों सनि
आंखि अंजावै॥

इस चित्र के साथ 'कलि की राति अधाने नहीं दिनहूँ में लला पुनि धात लगाई' जैसे छंदों की तुलना करने पर इसकी ताजगी स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है।

प्रगाढ़ रागात्मक लगाव (इंवाल्वमेंट) के साथ 'ऐद्रिय' (सेसुअस) चित्र

का एक नमूना है। होली के अवसर पर प्रेमी प्रेमिका के कुचों को लक्ष्य करके उन्हें पिचकारी तानता है। उधर प्रेमिका गुलाल की मूठ लेकर प्रेमी की ओर उचकी कि उसकी छातियाँ दलक उठीं (उरोजों में कंपन हुआ)। इस दृश्य को (उरोजों की गति को) देखकर प्रेमी (घनश्चानन्द) नशे में झूम उठे, उधर प्रिया कुलांच भरकर अचानक उचक गई (पिचकारी का निशाना चूक गया) :

रस चौचंद चांचरि फाग मची, लखि रीझि बिकानि थकी जु
चकी/समुहाय तहीं हरि भामिनी त्यों पिचकी भरि ताक तको
कुच की।/उत मूठि गुलाल उठें उकसे सु लगें पहिलें छतिया
दुचकी।/घनश्चानन्द धूमनि झूमि रहे गुलचाइल लै अचकां
उचकी।

इस स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है कि 'हरि' से आशय केवल प्रेमी (आश्रय) से है।

पद्माकर के होली वाले चित्र इस चित्र के सामने फीके पड़ जाते हैं। इसमें प्रिया की गति पर तो ध्यान है ही, उसके एक अंग की गति पर प्रेमी की केंद्रित दृष्टि और उसके परिणामस्वरूप उसका नशे में झूम कर रह जाना घनानन्द की प्रगाढ़ रागात्मकता का प्रमाण है।

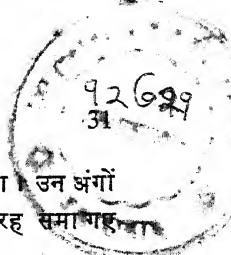
एक दूसरा चित्र है जिसमें प्रिया की सुकुमारता के साथ ही प्रेमी की आतुरता का चित्रण किया गया है। इस वर्जना में आतुरता को बढ़ा देने की अपूर्व शक्ति छिपी हुई है :

चातुर है रस चातुर होहु न, बात सयान की जात क्यों चूके।/
ऐसी ठनाठनी ठानत हो कित, धीर धरो न, परो जिन ढूके।/
देखि जियो, न छियो घनश्चानन्द, कोवरे अंग सुजान वधू के।/
चोली चुनावट चीन्हें चुभे चपि होत उजागर दाग उतू के॥

प्रिया सुजान की अंतरंग सखी का कथन आतुर प्रेमी के प्रति है। वह कहती है कि चतुर होकर इतनी आतुरता क्यों दिखाते हो? तुम्हें धैर्य धारण करना चाहिए। वधू सुजान के अंग अत्यंत कोमल हैं। इतने कोमल हैं कि उन्हें छूना ठीक नहीं। देखकर ही जियो, धैर्य धारण करो क्योंकि तुम्हारे आलिंगन में कस कर कोमल अंगों पर चोली में बनी हुई कढ़ाई के दाग उभर आते हैं। 'देखि जियो' में परिहास का कितना मधुर रूप तथा प्रणय का कितना स्निग्ध चित्र अंकित हुआ है। स्पर्श न करने के लिए जो स्त्रीजनोचित कारण दिया गया है वह अंतःकरण के प्रेम को और भी उद्दीप्त कर देता है।'

इस कथन को स्वयं वधू के मुख से मानने में इतनी सरसता नहीं रह जाती। सारी वर्जनाओं के बावजूद प्रेमी का अभिलिप्त घटित होता है। 'शुद्ध सामीप्य'

संयोग शृंगार के प्रगाढ़ चित्र



की प्राप्ति होती है जिससे मिले हुए आनंद का वर्णन नहीं हो सकता। उन अंगों को ही उस महासुख का पूरा अनुभव है जो एक-दूसरे में पूरी तरह समाप्त होता है :

मीत सुजान मिले को महासुख अंगनि भोय समोय रहौ है।/
स्वाद जगे रस-रंग-परे अति, जानत वैई न जात कंहो है।/द्वे
उर एक भए घुरि के घनआनन्द सुद्ध समीप लहौ है।/रूप-
अनूप-तरंगनि चाहि तऊ चित चाह प्रवाह बहौ है॥
दोनों के प्रत्येक अंग शुद्ध सामीप्य लाभ करते हुए एक-दूसरे में खो गए हैं। उनके चित्र में, इतने पर भी, नवीन आकांक्षाओं के प्रवाह में नई रंगीन तरंगे उठती चली जा रही हैं।

इसी प्रकार शरीर की पूर्ण तृप्ति के बाद भी बढ़ते हुए मानसिक आकर्षण की तीव्रता की व्यंजना एक और छंद में हुई है :

पौड़े घनआनन्द सुजान प्यारी परजंक/धरे घन अंक तऊ मनरंक
गति है।/भूषन उतारि अंग अंगर्हि सम्हारि, नाना/रुचि के
विचार सों समोय सीझी मति है।/ठौर-सौर लैलै राखें औरे-
औरे अभिलाखें,/बनत न भाखें तेई जानें दसा अति है।/मोद मद
छाकें धूमें रीझि भीजि रस झूमें।/गहें चाहि रहें चूमै अहा कहा
रति है॥

पर्यंक पर प्रिया को आर्लिंगन में समेटे हुए भी प्रेमी के मन की गति दरिद्र की तरह है। इतनी अतृप्ति, इतनी भूख है उसके मन में, इतनी अभिलाषाएं एक-एक अंग में पुंजीभूत हैं—कि सबका वर्णन संभव नहीं है। रति का यह चित्र अद्भुत है जिसमें आनंद की सीमा के साथ ही, अतृप्ति की असीमता का संकेत है। वह असीम अतृप्ति घनानन्द के वियोग वर्णन की तीव्रता की कथा कहती है।

उपर्युक्त छंद की विशेषताएं बताते हुए डा० बच्चन सिंह का कथन ध्यान देने योग्य है : 'यहां पर शारीरिक और मानसिक आकर्षण का कैसा अपूर्व संयोग है। न तो इसमें पायल और बिछिया बजने की धवनि है और न सिसकियों के शोर की अस्वस्थता (मारबिडटी)। फिर भी ऐंद्रिय प्रभावोत्पादकता उन चित्रों की अपेक्षा इसमें कहीं अधिक है।'¹

एक दूसरा रति-चित्र है जिसमें क्रीड़ा-जनित आलस्य के रस का आसव पान करने के बाद इस चित्र स्थिति में पड़े हुए हैं कि यह बताना कठिन है कि वे जाग रहे हैं या सो रहे हैं :

1. संतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ० 240-411.

सोए हैं अंगनि अंग समोए सु भोए अनंग के रंग निस्यों करि ।/
केलि-कला रस-आलस आसव-पान-छके घनश्रानन्द यों करि ।/
प्रेम-निसा मवि रागत पागत, लागत अंगनि जागत ज्यों करि ।/
ऐसे सुजान-विलास-निधान हैं सोए जगे कहि व्योरियै क्योंकरि ।

एक दूसरा रति-चित्र है, जिसमें मन और शरीर की ललक, उनकी अनेक चंचल गतियों और अनुभावों का मूर्त विद्यान किया गया है :

केलि की कला निधान सुन्दर सुजान महा,/अनन्त समान छवि-
छांह पै छिपैये सोनि ।/माधूरी-मुदित मुख-उदित सुसील भाल/
चंचल बिसाल नैन लाज-भी जिये चित्तानि ।/पिय अंग संग
घनश्रानन्द उमंग दिय, /सुरति तरंग रस-बिवस उर-मिलौनि ।/
झूलनि झलक, आधी खुलनि पलक, ज्वम, /स्वेदहि झलक भरि
ललक सिविल होनि ॥

इस प्रकार की अपूर्व तृप्ति के साथ ही अतृप्ति की असीमता घनानन्द के रागलिप्त मन की कथा कहती है। वे 'कथा' नहीं कह रहे हैं, जो किसी और नायक-नायिका के जीवन की घटनाओं या प्रेमानुभावों पर आधारित है, बल्कि उनके सामने अपने ही प्रगाढ़ रसानुभव के दृश्य-चित्र हैं, जो विरह में और स्पष्ट होकर वियोगी के हृदय का मंथन करते हैं।

सुरतांत का एक चित्र पूर्ण तृप्ति के बाद भी प्रेमी के मन की अतृप्ति की झलक देता है। प्रिया अपने बिखरे वस्त्राभूषणों और शिथिल तृप्त अंगों को संभालकर नींद में पड़ी हुई है। चित्र की प्रस्तुति इस प्रकार की है कि दर्शक (प्रेमी) की अतृप्ति झलक जाती है :

मद उनमाद स्वाद मदन के मतवारे, /केलि कै अवारि लौं सवांरि
सुख सोए हैं ।/भुजनि उसीसो धारि अंतर निवारि, जानु/जंघनि
सुधारि तन मन ज्यौं समोए हैं ।/सुपने सुरति पागे महा चोप
अनुरागैं, /सोए हूं सुजान जागैं ऐसे भाव-भोए हैं ।/छूटे बार ठूटे
हार आनन अपार सोभा/भरे रसे-सार घनश्रानन्द अहो ए हैं ॥

ऐसी तृप्ति अतृप्तिदायिनी प्रिया का वियोग ही इतना गंभीर हो सकता है।...सुजान के प्रति घनानन्द का असाधारण प्रेम उनके भक्त हो जाने के बाद भी तत्कालीन जनमानस में गंजता रहा, जिसका प्रमाण कुछ ईर्ष्यलु लोगों द्वारा रचित भड़ीवा के छंदों में मिल जाता है। डा० गौड ने पं० भवानी शंकर याज्ञिक से प्राप्त चार छंदों को उद्धृत किया है।¹ इनमें से एक छंद में घनानन्द के लिए कहा गया है :

हुरकिनी सुजान तुरकिनी को सेवक है। तजि राम नाम वाको
पूजे कामधाम है।

1. घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 7-8.

एक दूसरे छंद में उन्हें 'पाप को भवन करे अगम गमन' कहने के साथ एक अन्य छंद में उन्हीं की शैली में उनकी ओर से सुजान के इजारबंद का जूँ बनने की अभिलाषा का वर्णन किया गया है :

कबहूँक खुजावत में छुवती तिर्हि आनंद कों तब हौं भरतौ । /

तब रेंगतों कोहुक अंगन पैं निज देह तिही रस सों भरतौ । / कहूँ

चौंकि कै मागिन जो गहती तब हों उन हाथन् सों मरतौ । / वह

ईस कहूँ घनआनन्द को जु सुजान-इजार की जूँ करतौ । ॥

इन छंदों के साथ एक टिप्पणी भी मिलती है जिसमें लिखा है कि :

कायथ आनन्दघन महा हरामजादो हो । मु ब्रज की कटा में

आयो । परंतु अपजस वाको धिर है ।

इस टिप्पणी से और इन छंदों से जो किसी तथाकथित सदाचारी भक्त द्वारा कहे गए लगते हैं, इतना सिद्ध हो जाता है कि घनानन्द का सुजान के प्रति प्रगाढ़ और असाधारण प्रेम उसी समय लोक विख्यात हो गया था । उनके आचरण को पापपूर्ण कहने और उनके प्रेम की भड़ैती करने वालों के मन में घनानन्द के प्रति चाहे जितनी धृणा रही हो, इतना स्पष्ट है कि कवि के इस प्रगाढ़ व्यक्तिगत लगाव के कारण कविता का बड़ा उपकार हुआ है । प्रिय के प्रति अङ्गिर एकनिष्ठता के कारण उसको लंपट भी नहीं कहा जा सकता । घनानन्द को केवल प्रेम की पीर का कवि न मानकर उनके छंदों में अभिव्यक्त होने वाले संपूर्ण प्रणयदृश्य को एक साथ देखने पर सहज ही कहा जा सकता है कि प्रणय काव्य की दृष्टि से हिंदी साहित्य में उनका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है ।

6

संयोग वर्णन में परंपरा का स्वीकरण

घनानन्द की प्रगाढ़ रागात्मकता अपूर्व है जिसकी अभिव्यक्ति उनके संयोग और वियोग दोनों स्थितियों का चित्रण करने वाले छंदों में हुई है। राग के जिस स्तर पर प्रेमी का मन रमता है वहाँ रूढ़ियों के अनुसार 'खंडिता', 'मात' आदि के लिए कोई गुंजाइश नहीं है फिर भी इसे युग का प्रभाव कहिए या चाहे जो कुछ, कि घनानन्द ने भी मदपान, खंडिता और मानिनी के चित्र प्रस्तुत किए हैं। मदपान के कारण अपने को सम्भाल पाने में असमर्थ प्रेयसी को देखकर लज्जा भी लजाकर अकेली पड़ जाती है, अर्थात् उसका साथ छोड़ देती है :

दृग छाकत हैं छवि ताकत ही मृगनैनि जबै मधुपान छकै, / घन

आनन्द भीजि हंसैं सु लसैं भूकि भूमति घूमति चौकि चकै । / पल

खोलि ढकै लगि जात जकै, न सम्हारि सकै बलकै रु वकै, /

अलबेली सुजान के कौतुक पै अति रीफि इकौसी हूँ लाज थकै ।

सुजान का उद्दीपन गुण इससे बढ़ता है अवश्य, किंतु इस छंद में घनानन्द की (आश्रय की) वह दृष्टि उपस्थित नहीं है जो उसके सहज रूप वर्णन अथवा संयोग-वर्णन में उपस्थित रहकर पूरे चित्र को प्रखर राग से दीप्त कर देती है।

खंडिता-वर्णन के प्रसंगों की भी यही स्थिति है। अन्य के प्रति अनुराग या विलासदृष्टि होने पर नायक प्रिया से कपट करता है और उस कपट को लक्ष्य करके नायिका अपने प्रच्छन्न क्रोध का प्रकाश करती है। घनानन्द के काव्य में प्रेम का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है उसमें एक को छोड़कर अन्य के प्रति किसी प्रकार के भुकाव का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता, फिर भी नायिका के मन का क्रोध नायक के प्रति इसीलिए व्यक्त हुआ है कि वह अन्य स्त्री में अनुरक्त है। इस प्रकार की उक्तियों को घनानन्द के उस प्रेमप्रसंग के भीतर स्वीकार करने का कोई कारण या औचित्य नहीं है। खंडिता के कुछ चित्र हैं :

‘लोयनि लाल गुलाल भरे कि खरे अनुराग सों पागि जगाए । /

कै रस-चांचरि-चौचंद मैं छतिया पर छैल नखच्छत छाए । / भीजि

रहे समनीर सुजान घरी डग ढीलियै लागौ सुहाए/भोरहू
ऐसी खिलारिनि पै, घनानन्द का छल छूटन पाए ।'

जान प्यारे नागर अनूप गुन आगर हौ/जगत-उजागर विलास-
रसमसे हौ ।/नवल सनेह साने आरसनि सरसाने/विधना बनाय
बाने अंग-अंग लसे हौ ।/छबि निखरे हूँ खरे नीकेई-लगत मोंहि/
आनन्द के घन गूढ़ गांसनि सों गसे हौ ।/भोर भए आए भांति-
भांति मेरे मन भाए/एहो घरबसे आज कौन घर बसे हौ ।

रूप के भार न होति है सौंहीं लजौंहिए दीठि सुजान यों भूली ।/
लागियै जाति, न लागीं कहूँ निसि, पागी तहीं पलकौगति भूली ।/
बैठियै जू हिय पैठति आजु कह। उपमा कहियै समतूली ।/आए हो
भोर भए घनानन्द आखिन मांभ तौ सांभस्ती फूली ।

इस प्रकार के और भी छद्म हैं। इन छंदों में काव्यत्व है किन्तु घनानन्द के संदर्भ में इन छंदों को देखकर ध्यान काव्यत्व पर नहीं जाता, इसी पर केंद्रित हो जाता है कि इनमें से जो नायक उभर कर आता है वह उससे भिन्न कोई और है जो प्रगाढ़ राग में आपादमस्तक डूवा हुआ प्रिया को अंक में लेकर भी रंग की तरह मन में श्रृंगार का अनुभव करता हुआ बार-बार प्रिया के अंगों को चूमता चला जाता है। प्रिया को खंडिता बनाने वाला नायक रीति-परंपरा का नायक है, घनानन्द के हृदय का बावला प्रेमी वह नहीं हो सकता।

इसी तरह मान वाले चित्र हैं :

बारनि भोर कुमार भजै पहुपावलि हास-विकासहि पूजति ।/पाठ
कियौं करे आठू जाम, सुबोलन सीखिबै कोकिल कूजति ।/वे घन
आनन्द रीझि छए तकि तो छबि आन क्यों आंखिन छूजति ।/
एरी बसंत-लजावनि कंत सो जान हूँ मानमई कित हूजति ।

ऐसे कत को पाकर जो तुम्हारी छबि को देखकर किसी दूसरे की छबि को आंखों से भी स्पर्श नहीं करता, तू मानवती क्यों होती है? इस कथन में घनानन्द के प्रेमी की एक झलक मिल जाती है जो दूसरी छबि का आंखों से भी स्पर्श नहीं करता। सखी के इस कथन में एक अन्य संकेत भी है। 'तुम्हारी छबि देखने के बाद किसी पुरुष की नजर में कोई और स्त्री नहीं चढ़ सकती। फिर नायक को अन्य में अनुरक्त मानकर मानवती होने का क्या कारण है?'

एक अन्य छंद में मानवती सोचती है :

अब यों उर आवत है सजनी उन सों सपनेहू न बोलियै री ।/
अरु जौ निलजे हूँ मिलौं तो मिलौं मन तें गस गुंज न खोलियै
री ।

मानिनी का क्रोध यहां तक बढ़ जाता है कि प्रेमी रात भर उसकी मनुहार करता रह जाता है। रात बीत जाती है पर वह चंद्रमुखी द्रवित नहीं होती। सूखी नायक की दयनीय दशा और मानिनी की कठोरता के लिए उसके प्रति शिकायत के स्वरों में कहती है :

हा हा करि हारी ननिहारी रुखियै महा री / मोहूं सों चिन्हारी
मानै तनको नहीं कहूं ।/साधि कै समाधि सी अराधति है काहि
दैया,/अरहि पकरि अति निठुर करं न हूं ।/प्रानपति आरति जौ
जानै तौ सुजान प्यारी,/नीवै न धरैयै नावं ऐसे ग्री' कहाय हूं ।/
राकानिसि आली व्याली भई घनग्रानन्द कौं,/डरि चल्यौ चंदा
पै न ढरै चंदमुख हूं ।

चंद्रमा ढल गया। मानिनी उसका अनुसरण करती तब भी ढल जाती। चंद्रमा का अनुसरण उसके लिए स्वाभाविक भी होता क्योंकि वह भी चंद्रमुखी है, किन्तु उसका मान इतना अटूट है कि वह नहीं ढली (द्रवित नहीं हुई)। इस अटूट मान से जिस प्रकार के गुरुतर अपराध वाले नायक की 'इमेज' बनती है वह घनग्रानन्द का प्रकृत प्रेमी नहीं बन सकता। मान तोड़ने के लिए नायक अपनी ओर से कुछ भी उठा नहीं रखता :

सीस लाय, दृग छवाय, हिये पै बसाय राखौं,/इते मान मान
आवै प्रानन मैं लै धरौं ।/हेरि हेरि चूमि चूमि सोभा छकि धूमि
धूमि,/परसि कपोलन सों भंजन कियो करौं ।/केलि-कला कन्दिर
विलास-निधि-मन्दिर ये,/इन ही के बल हैं मनोज सिन्धु कों
तरैं ।/यातें घनग्रानन्द सुजान प्यारी रीझि भीजि,/उमगि उमगि
बेर बेर तेरे पा परौं ।

मानिनी के पांवों के लिए पूरे छंद में जो विशेषण आए हैं वे इस प्रणय व्यापार में ऐंद्रिय बोध की उपस्थिति का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। केलि की कला के स्रोत के रूप में और विलास रुदी निधि के मंदिर के रूप में नायिका के पांव दिखाई पड़ते हैं। इसी छंद में एक विलक्षण रूपक कवि ने दिया है। प्रेमी कहता है कि हे प्रिये, मैं इन्हीं (तुम्हारे पांवों) के बल पर ही काम-सागर (मनोज-सिंधु) का संतरण कर जाता हूं। 'मनोज-सिंधु' का संतरण कामप्रसंग में अपनी कथा कहते में स्वयं समर्थ है। यह स्मृति मानिनी को कितनी देर तक मानिनी बनी रहने देगी ?

इतना ही नहीं :

मीन जलहीन लौं अधीन हूं अनंदघन,/जान प्यारी पायनि पै
कब को हहा करै ।

फिर भी मान नहीं दूटता। ऐसे अटूट मान के लिए वैसे ही गंभीर कारण

भी होते चाहिए। अतः सप्तनी की व्यवस्था भी है :

देखि धौं आरसी लै बलि नेकु, लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।

• और
अनेक
— यहां

। संभोग
परकीय
। अनन्द के

स्थल पर
मेल नहीं
। इस में भी
। द्वार पर
वहीं हैं।
। जो अद-
। देती है
। र कुछ भी
। वशेषताओं

Received one bundle from
Dr. R. K. Neema, Hindu Deptt. A.C.

R.K.Neema,Kan.
16. 3. 81 -

विरहानुभूति की विकासात्मक स्थितियाँ

सौंदर्य, आसक्ति, पूर्वराग और मिलन के चित्रों में धनानन्द के प्रेमी हृदय की जो प्रगाढ़ रागलिप्त विशेषता प्रकट हुई है वही वस्तुतः उनकी प्रेम-पीर को इतनी तीव्रता देने का कारण है। इस बात का संकेत पहले ही वियोग के संबंध में विचार करते हुए किया जा चुका है। यहाँ मिलन के बाद क्रमशः आने वाले वियोग प्रसंगों में विकासात्मक स्थितियों का निर्दर्शन कराना ही अभीष्ट है।

प्रवासी प्रिय और अपने बीच की दूरी इतनी बड़ी है कि वहाँ तक बातें पहुंचाने या वहाँ की बातें सुनने की भी संभावना नहीं है :

बात के देस तें दूरि परे, नियरे सियरे हियरे दुख दाहे ।

इतनी दूर पर बसे प्रिय के पास संदेश भेजना वैसे भी संभव नहीं है। इधर संदेश भेजने का प्रयत्न भी किया जाय तो बाधाएं अनेक हैं :

कहाँ जो संदेशों ताको बड़ोई, अदेसो आहि, /न्हानै मन बारे की
कहैबे को सुनै सु कौन। /निघरक जान् अलबेले निखरक ओर,/
दुखिया कहै'ब कहा तहाँ को उचित हैन। /परदुख-दल के
दलन कौ प्रभजन हो, /ठरकौहे देखि के बिबस बकि परी मौन।/
इत की भस्म दशा लै दिखाय सकत जू, /लालन सुबास सों
मिलाय हू सकत पौन॥

पवन की आर्द्धता, (ठरकौहे स्वभाव) को देखकर वियोगी को इतना कहने का साहस होता है कि वह (पवन) चाहे तो यहाँ की भस्म (भस्म दशा) को उड़ाकर प्रिय के सामने कर दे, उसे दिखा दे और प्रिय के अंगों से निकली सुरंघ से मिला दे।...पवन से ही एक दूसरे छंद में प्रार्थना की गई है कि वह प्रिय के पांवों की घूल ला दे जिसे वियोगी अपनी आँखों में भरकर उनके ताप को शांत कर लेगा :

विरह-विद्या की मूरि आँखिन में राखों पूरि, /धूरि तिन पायन
की हा हा, नैकु आनि दै॥

ऐसे ही दूसरों के कार्य के लिए ही देह धारण करने वाले बादल से प्रार्थना की

गई है कि कभी वह वियोगी के आंसुओं को लेकर उस विश्वासघाती सुजान के आंगन में बरसा दे :

परकार्जिंह देह को धारै फिरौ परजन्य जथारथ हँडै दरसौं ।

निधि-नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौं । /

घनआनंद जीवन दायक है कछू मेरियो पीर हिये परसौं । / कवहू

वा विसासी सुजान के आंगन मो अंसुवानि को लै बरसौं ।

पवन और मेघ की अतिशय उदारता और परोपकारी स्वभाव के कारण उनसे (सीधे संदेश तो नहीं भेजा गया है पर) निवेदन किया गया है कि प्रिय के पांवों की धूल या उनके शरीर की गंध का एक भोंका ही ला दे और वियोगी-दशा को सांकेतिक रूप में प्रिय तक पहुंचा दे । इन छंदों में संदेश भेजने की अपेक्षा प्रिय के साहचर्य वाली धूल या गंध की कामना अधिक प्रबल है ।

पत्र लिखने की संभावना और भी कम है । एक तो 'मन से लेकर मुख तक' बड़ा फेर है (अंतर है) । मन की बात मुख से कही जाय तो वह इतनी हल्की हो जाती है कि 'बखाने ते जाय परे दिन राति को अन्तर' । किसी तरह पत्र लिखने की बात सोची भी जाय तो वहां भी बाधा है । नेत्रों का प्रवाह कभी रुकता ही नहीं, न दृष्टि आंसुओं के पार देख पाती है । पत्र लिखा कैसे जाय :

'घनआनंद जान अनोखी दसा, न लखों दई कैसे लिखौं पतियां । /

नित सावन दीठि सु बैठक में टपके बरूनी तिहि ओलतियां ॥'

पत्र लिखने का प्रबंध हो भी जाय तो मन में जो बातें हैं, उनका बाहर आना संभव नहीं है :

मन तें मुख लौं नित फेर बड़ो कित व्यौरि सकौं हित की
बतिया । /घनआनंद जीवन प्रान लखी सु लिखी केहि भाँति
परी पतिया ॥'

पत्र लिखना संभव नहीं है । उधर वियोगी को लगता है कि प्रिय के सामने तो अपना हृदय रूपी पत्र ही खोलकर रख दिया था जिसे उसने बिना बांचे टुकड़े-टुकड़े करके डाल दिया :

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन मधि सोधि सुधारि कै लेख्यौ ।/
ताहि के चारु चरित्र विचित्रनि यों पत्ति कै रचि राखि
बिसेख्यौ । /ऐसो हियो हित पत्र पवित्र जु आन कथा न कहूं अब-
रेख्यो । /सो घनआनंद जान अजान लों टूक कियो पर बांचि न
देख्यौ ॥

अनजान में हृदय पत्र नहीं फाड़ा गया है । जानबूझ कर अनजान बनते हुए निठुर प्रिय ने ऐसा कठोर कर्म किया है । उसके पास पत्र भेजने का क्या लाभ ? अतः संदेश, पत्र, सब व्यर्थ है । किर भी वियोगी की आशा तो ऐसी है कि मरने पर भी नहीं छूटेगी । उसी अमित आशा के कारण वह ऐसा भी सोचता है कि

प्रिय चाहे जितना निर्दयी हो, मेरी दशा देखकर उसके मन में दया उत्पन्न हो ही जाएगी। इसी आशावादिता का परिणाम है कि वियोगी को (न जाने क्यों) ऐसा लगा कि प्रिय ने आने की आशा बंधा दी है। (अंतःकरण ही प्रमाण है) आशा की फिलिमिलाहट में तड़प की तीव्रता बढ़ गई है :

जब तें तुम आवन-आस दई तब तें तरफौं कब आयहों जू ।/
मन-आतुरता मन ही में लखौं मनभावन, जान सुभाय ही जू ।/
विधि के दिन लौं छिन बाड़ि परे यह जानी वियोग विताय ही
जू ।/सरसौं घनआनंद वा रस कौं जु रसा रस सों बरसाय ही
जू ।

इस अमूर्त आशा ने मूर्त रूप ले लिया है यह जानकर कि प्रिय ने लौटने की कोई अवधि निश्चित कर दी है। पहले तो कोई बात न पहुंचती थी, न आती थी। अब अवधि की सूचना आ गई है। इस सूचना से दर्शन की भूखी-प्यासी आंखों में लाखों अभिलाषाएं भरने लगी हैं :

अभिलाखनि लाखनि भाँति भरीं बरनीन रुमांच हूँ कांपति
हैं ।/घनआनंद जान सुधाघर-मूरति चाहनि अंक में चांपति हैं ।/
टग लाय रहीं पल पांडे कै सु चकोर की चोपहि भांपति हैं ।/
जब तें तुम आवनि औधि बदी तब तें अंखियां मग मापति हैं ॥

आंखों का अपना अलग व्यक्तित्व है, वे एक अंग मात्र नहीं रह गई हैं। अवधि निश्चित हो गई। आंखें रास्ता नापते-नापते पथरा गईं। वियोगी को लगने लगा है कि वयस (आयु) सेना के लिए आगे जाने वाले सामान की तरह चलती जा रही है। अंत में शरीर भी आएगा। अब भी अवसर है, अगर प्रिय आ जाता :

मग हेरत दीठि हिराय गई जबतें तुम आवन-औधि बदी ।/
बरसो कित हूँ घनआनंद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी ।/
हियरा अति औटि उदेग की आंचनि च्वावत आंसुनि मैन
मदी ।/कब आयहौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति
लदी ॥

प्रतीक्षा में आंखें पथरा जाने का मुहावरा है जिसकी ध्वनि को माध्यम बनाकर कवि कहता है कि प्रवासी प्रिय का रास्ता देखते दृष्टि ही खो गई। शब्द के स्तर पर अनोखी कारीगरी है, एक चीज ढूँढ़ते समय दूसरी भी खो गई—मग हेरत दीठि हिराय गई।—दूसरी पंक्ति में असंगति अलंकार की एक नई छटा दर्शनीय है। विरह की अनुभूति में आश्रय की आंखों में अश्रु और उससे अधिक हृदय में सोच की बाढ़ आती है। इस क्लेश का संबंध प्रवासी प्रिय के साथ जुड़ा है। उसके अभाव का दुख तो है ही—वह दुख यह सोच-सोचकर निरंतर बढ़ रहा है कि प्रिय अस्त्र अपनी उपस्थिति से आनंद की वर्षा कर रहा है। वर्षा चाहे जहां हो रही हो—नदी (सोच-नदी) यहां (विरही-आश्रय के हृदय में) ही बढ़ती है।

ध्यातव्य है कि वर्षा और नदी में आने वाली बाढ़ का यही संबंध है भी। काशी की गंगा में बाढ़ आने का कारण हिमालय की वर्षा भी हो सकती है, काशी में चाहे सूखा ही पड़ा हो।

अवधि की सूचना से आशा विश्वास में बदल गई है। वह विश्वास कभी कभी सार्थक होता हुआ दिखता है। बादल आते हैं। बादलों के रूप में सघन आनंद दायक प्रिय का स्वरूप उभर आता है। अभिलाषाओं के लाजों नये अंकुर फूटने लगते हैं :

बरसैं तरसैं सरसैं अरसैं न, कहूँ दरसैं इहि छाक छई। /निरखैं
परखैं करखैं हरखैं उपजैं अभिलाखनि लाख जई। /घनआनंद
ही उनए इनि में बहुभांतिन ये उन रंग रई। /रसमूरति स्या-
महि देखत ही सजनी अंखियां रसरासि भई॥

प्रिय के रूप की प्रतीति कराते, उसके आने के विश्वास को दृढ़ करते बादल आ गए हैं। आज पूरी प्रकृति कृष्ण और ही रंग की (अनोखे, नए आकर्षण से युक्त) लग रही है :

आयो महारस पुंज भरयो घनआनंद रूप-सिंगार के मौरै।/
सींचत है हिय देस-सुदेस अपूरब आंखिनि ठानत ठौरै। /मोहन
बांसुरिया सी बजै मधुरे गरजें धुनि में मति बौरै। /आज की
मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि आरै॥

इन चित्रों को पूर्वराग की समाप्ति पर मिलन प्रसंग के संदर्भ में भी रखा जा सकता है, किंतु तब इनकी सूक्ष्म व्यंजकता समाप्त हो जाती है।

अगणित अभिलाषाओं से भरा विधोगी हृदय प्रियागम की प्रतीक्षा कर रहा है। अवधि की सीमा आ गई है। ऐसे में ये घन और उनको उमड़ा देख-कर बोलते हुए मधुरों की बोली कुछ और तरह की लगे, इसका काव्यत्व अलग है।

विरहिणी के स्वप्न का जिसमें पलभर के लिए प्रिय का साहचर्य प्राप्त होने की स्थिति आते-आते रह जाती है, वर्णन सूर जैसे रससिद्ध कवियों ने बड़ी कहणाजनक मार्मिकता के साथ किया है :

मनो गोपाल आए मेरे गृह हंसिकर भुजा गही। /कहा कहौं
बैरिन भई निदिया निमिष न और रही। /ज्यौं चकई प्रतिविम्ब
देखिकै आनन्दी पिय जानि। /सूर पवन मिस निठुर विधाता
चपल कियौ जल आनि। —सूरसागर

घनानन्द में यह स्वप्रचित्र अभिलाषा की आवेगपूर्ण तीव्रता के नाते विनाप्राकृतिक बिंब-विधान के ही अत्यंत मर्मस्पर्शी हो गया है :

सोवत भाग जगे सजनी दिन कोटिक या रजनी पर बारे।
नेह-निधान सुजान सजीवन औचक हौ उर-बीच पधारे।

सौतिन ते विय पाय इकौसें भरे भुज सोच सकोच निवारे ।

बैरिन दीठि जरौ घनआनन्द यों जिय लैं पज पाट उधारे ।

स्वप्न और यथार्थ की भिन्नमिलाहट 'उर-बीच' पवारने में अत्यंत कलात्मक रूप में प्रस्तुत हुई है । स्वप्न का संबंध हृदय के साथ ही है और जाग्रत अवस्था में (स्वप्न के भीतर उभरने वाले दृश्य की अवस्था व्यंग्य है) प्रिय का उर बीच पवारना—दोनों की एक साथ प्रस्तुति में अनुभव और भाषा दोनों की पूर्ण सचाई को देखा जा सकता है । पहली पंक्ति में ऐसा ही काम 'भाग' के विशेषण 'सोचत' के प्रयोग में भी भलकता है । 'मेरे सोते हुए भाग जग गए तब ऐसा धटित हुआ और दूसरी ध्वनि यह कि 'मैं ज्यों ही सो सकी (विरह में नींद तो आती नहीं, पर पल भर को ज्यों ही आई) मेरे भाग जग गए,— तीसरी ध्वनि अत्यंत करुण है जो परिस्थिति के व्यंग्य को उभारती है कि भाग ज्गे भी तो सपने में (यथार्थतः नहीं) । अंतिम पंक्ति की संरचना उस करुणा को पूरा उभार देती है जब विरहिणी यह अनुभव करती है कि दृष्टि (दीठि) के नाते ही यह विच्छ पड़ा है । नेत्रों में दृष्टि न होती तो वस्तुतः स्वप्नभंग होने पर भी जगत् से साक्षात् न होता और तब इतनी पीड़ा का दंश नहीं सहना पड़ता । प्रतीक्षा करते हुए उस दृष्टि का खो जाना (पथरा जाना) कष्टप्रद है लेकिन इस स्वप्न-प्रसंग को खंडित करने में इसी दृष्टि का दोष है । विरहिणी उस दृष्टि को बैरिन तो कहती ही है, उसे जलने का शाप भी देती है जो परिस्थिति की कूरता का व्यंजक है ।

मौन की पुकार और अकथं गंभीर वियोग-व्यथा ही घनानन्द की अपनी विशेषता है । उनकी व्यथा कही जा सकने वाली नहीं है । मौन की पुकार ही अगर प्रवासी प्रिय तक पहुंचे तो पहुंचे, कोई दूसरा उपाय नहीं है उस वेदना की अभिव्यक्ति का, क्योंकि 'मन से मुख तक इतना फेर' है कि कह देने पर वास्तविक वेदना में और उसके कथन में दिन-रात का अंतर पड़ जाएगा । यही कारण है कि विरह-वर्णन की रूढ़ियों को छोड़ना ही उन्होंने उचित समझा है । उद्वेग, उन्माद, व्याधि, जड़ता और ऊहात्मक ताप वर्णन या कृशतावर्णन (जैसा बिहारी आदि में मिलता है) घनानन्द में नहीं है । इसके आधार पर ही घनानन्द को रीति के प्रभाव से बिल्कुल अलग माना जाता है । [किन्तु संयोग की तरह वियोग वर्णन भी कहीं न कहीं से परंपरा और परिवेश से प्रभावित अवश्य हो जाता है ।

जिस प्रकार संयोग वर्णन में प्रेम की प्रगाढ़ता और अनन्यता के बाबजूद कुछ बातें ऐसी हैं जो घनानन्द पर परंपरा और परिवेश का प्रभाव प्रमाणित करती हैं, उसी प्रकार वियोग वर्णन में भी शास्त्रीय वियोग दशाओं तथा ऊहा की सीमा का स्पर्श इनके छंदों में मिलता है यद्यपि वह औरों की तरह कृत्रिम नहीं लगता ।

वियोग वर्णन में परंपरा त्रौर परिवेश का प्रभाव

परंपरा के पूर्ववर्ती सूत्रों के संदर्भ में यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि सूफी प्रभाव घनानन्द पर हल्की प्रेरणा के रूप है, इसके बावजूद उनके काव्य का विकास भारतीय साहित्य परंपरा के भीतर ही हुआ है।¹ जहाँ धाव करना, कलेजा काटना, नेत्रों की धार से धैर्य रूपी पर्वत का चूर-चूर होना... जैसे वर्णन हैं, उन छंदों पर फारसी या सूफी प्रभाव स्पष्ट है : फारसी में प्रेम या विरह का वर्णन करते हुए जिस प्रकार की अत्युक्तिपूर्ण शैली का प्रयोग किया जाता है वैसा ही घनानन्द ने भी किया है² :

1. गहि काढे करेजो कलायिन कूकै ।
2. कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढति री/कूकि कूकि अबहीं करेजो कोरि लै ।
3. छिदी छतिया अकुलानि-छुरी ।
4. पाती मधि छाती-छत लिवि न लिवाए जार्हि/काती लै विरह वाती कीने जैसे हाल हैं ।
5. सुधराई-सान सौं सुधारि मसि असि कसि;/कर ही में लिए निस-वासर फिरत हैं ।/तेरे नैन सुभट चुहट चौट लागै वीर,/गिरिवर धीरता के किरचा करत हैं ॥

1. हिंदी साहित्य का अतीत, भाग-2, शृंगारकाल, पृ० 714. 2. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 462.

उक्त पंक्तियों को उद्धृत करते हुए विद्वानों ने घनानन्द पर फारसी प्रभाव¹ स्वीकार किया है। इस प्रकार की छाया कहीं-कहीं और भी स्पष्ट हो जाती है :

1. अंतर आंच उसास तचै अति, ग्रेंग उसीजै उदेश की आवस । /
ज्यों कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सु घरै नहीं व्यावस ॥

2. अधिक बधिक तें सुजानि रीति रावरी है, /कपट-चुगौं दै फिरि
निपट करौं चुरी । /गुननि पकरि लै, निपांख करि छोरि देहु,
मरै न जियै, सो महा विषम दया-चुरी ॥

यहां पर वियोग की ज्वाला में सांसों का तप्त हो जाना और आवेगों की भाप में अंगों का उबलने लगना और पश्चाताप की उमस में जीव का तड़पना, तथा कृष्ण को बहेलिया बतलाकर पक्षी अर्थात् स्वयं का बिछ होना, पंखों का उखाड़ दिया जाना और उनकी दया की छुरी से अपने अधमरे होने आदि का जो जुगुप्साजनक व्यापार है वह और कुछ नहीं फारसी रंगत का ही परिणाम हैं ॥²

इस छंद में घनानन्द की अपनी चीज है 'दया-चुरी' का प्रयोग। अति आक्रामक रूप वाले निठुर प्रिय की जो दया है वह छुरी का काम करती है जो 'गला काटना' है। गला काटने वाले को दया के संबंध में सोचना भी अव्यावहारिक है, लेकिन युद्ध के अतिरिक्त जिस पीड़ा का अन्य कोई उपचार न हो, उससे मुक्ति दिलाने वाली 'छुरी' दया की ही हो सकती है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। वह दया-चुरी महा विषम है जो न जीने देती है, न मरने।

'इकलता' जैसी रचनाओं में तो शैली क्या वर्ण विषय तक को फारसी परंपरा से प्रभावित माना गया है। यहां पर माशूक का बेदरद होना, किशोर वय का (कमसिन) होना, उसकी आंखों के तीर से कवि का घायल होना, आशिक के हृदय पर दिलजान द्वारा छुरे का प्रहार किया जाना आदि बातें शुद्ध फारसी प्रभाव से ओतप्रोत हैं। आशिक-माशूक के तर्ज की ऐसी चर्चा घनानन्द की कृतियों में जगह-जगह और बार-बार देखी जा सकती है।

यहां केवल इतना काफी है कि (1) इस प्रकार की रचनाओं से घनानन्द का वह व्यक्तित्व नहीं बनता है जिसके कारण हिंडी में वे अप्रतिम कहे जाते हैं। (2) अपनी मुख्य रचनाओं में घनानन्द इस प्रकार की बातों को महत्व नहीं देते। वे केवल वियोगी की पीड़ा की अकथनीयता और मृत्यु के बाद भी प्रेमी की

1. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 462-63. 2. वही, पृ० 464।

आशावादिता पर ही जोर देते हैं। इस कथ्य को उनकी व्यंजनापूर्ण और विरोध-मूलक वचन वक्रता और भी तीव्र कर देती है। यह तीव्रता पाठक की जरा सी असावधानी से ऊहा जैसी लगने लगती है।

इस प्रकार घनानन्द के छंदों में आसव, मद और मद के प्रभाव से भूमते हुए नेत्र आदि के जो वर्णन हैं, उनके आधार पर दरबारी प्रभाव भी विद्वानों द्वारा देखा गया है। घनश्चानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के मीरमुश्शी (प्रायवेट सेक्रेटरी) थे, फलस्वरूप उन पर दरबारी वातावरण और मुगल रहन-सहन, आचार-विचार और सम्यता की छाप का पड़ना स्वाभाविक था। घनानन्द के विरह वर्णन में दरबारी रंग-ठंग की भलक स्पष्ट है। उसमें कहीं मधुपान का वर्णन किया गया है तो कहीं बीणा की मीड़ का। इसी प्रकार लौटी, आदि शब्दों के व्यवहार भी मुसलमानी दरबार के वातावरण का सूचन करते हैं।¹

घनानन्द पर अपने परिवेश का प्रभाव विल्कुल नहीं था, ऐसा कहना तो उचित नहीं होगा, क्योंकि कोई भी रचनाकार अपने को परिवेश से पूरी तरह अलग नहीं रख सकता। किन्तु दरबार के मीरमुश्शी हीने के नाते उन पर प्रभाव दूसरों से अधिक था, ऐसा मानना अनुचित है। बिहारी, पद्माकर की बात तो छोड़ दीजिए सूर तुलसी तक के काव्य में मुगल दरबारों का प्रभाव की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और गहरा है। पूरे मध्य-कालीनकाव्य पर मुगल दरबार की छाप देखी जा सकती है। यह अवश्य है कि कहीं वह गहरी है, कहीं एकदम हल्की। घनानन्द की प्रवृत्ति से मेल खाने वाली उनके हृदय की अकथ कथा को मौन की सक्षम भाषा में उतार देने वाली जो रचनाएँ हैं उनमें इस प्रकार की छाप इतनी हल्की है कि उसका संधान बड़े यत्न से ही संभव है।

वैसे तो घनानन्द की 'इश्कलता' जैसी रचना में अथवा फारसी में मसनवी लिखने की मान्यताएँ² उनके फारसी ज्ञान और फारसी प्रेम का प्रमाण हैं ही किन्तु उनकी विरहानुभूति की विशेषता फारसी और सूफी प्रभाव से कहीं आगे की चीज है।

घनानन्द के वियोग में शास्त्रीय विरह दशाएँ भी देखी जा सकती हैं।

1. अभिलाषा

घनानन्द के छंदों में वियोगी के मन और आँखों में भरी हुई लाखों अभिलाषाओं के संकेत बार-बार आते हैं।

1. रीति स्वच्छंद काव्य-धारा, ४०, 463. 2. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, ४० 462 घनश्चानन्द ग्रंथावली, वाडमुख, ४० 74 पर उद्धृत विहार उड़ीसा रिसर्च जर्नल।

उक्त पंक्तियों को उद्घृत करते हुए विद्वानों ने घनानन्द पर फारसी प्रभाव¹ स्वीकार किया है। इस प्रकार की छाया कहीं-कहीं और भी स्पष्ट हो जाती है :

1. अंतर आंच उसास तचै अति, श्रंग उसीजै उदेश की आवस ।/
ज्यों कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सु धरै नहीं व्यावस ॥

2. अधिक बधिक तें सुजानि रीति रावरी है, /कपट-चुगौ दै किरि
निपट करौं बुरी ।/गुननि पकरि लै, निपांख करि छोरि देहु,
मरै न जियै, सो महा विषम दया-छुरी ॥

यहां पर वियोग की ज्वाला में सांसों का तप्त हो जाना और आवेगों की भाप में अंगों का उबलने लगना और पश्चाताप की उमस में जीव का तड़पना, तथा कृष्ण को बहेलिया बतलाकर पक्षी अर्थात् स्वयं का बिछ होना, पंखों का उखाड़ दिया जाना और उनकी दया की छुरी से अपने अधमरे होने आदि का जो जुगुप्साजनक व्यापार है वह और कुछ नहीं फारसी रंगत का ही परिणाम हैं ।²

इस छंद में घनानन्द की अपनी चीज है 'दया-छुरी' का प्रयोग। अति आक्रामक रूप वाले निठुर प्रिय की जो दया है वह छुरी का काम करती है जो 'गला काटना' है। गला काटने वाले को दया के संबंध में सोचना भी अव्यावहारिक है, लेकिन युद्ध के अतिरिक्त जिस पीड़ा का अन्य कोई उपचार न हो, उससे मुक्ति दिलजाने वाली 'छुरी' दया की ही हो सकती है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। वह दया-छुरी महा विषम है जो न जीने देती है, न मरने।

'इश्कलता' जैसी रचनाओं में तो शैली क्या वर्ण विषय तक को फारसी परंपरा से प्रभावित माना गया है। यहां पर माशूक का बेदरद होना, किशोर वय का (कमसिन) होना, उसकी आंखों के तीर से कवि का धायल होना, आशिक के हृदय पर दिलजान द्वारा छुरे का प्रहार किया जाना आदि बातें शुद्ध फारसी प्रभाव से ओतप्रोत हैं। आशिक-माशूक के तर्ज की ऐसी चर्चा घनानन्द की कृतियों में जगह-जगह और बार-बार देखी जा सकती है।

यहां केवल इतना काफी है कि (1) इस प्रकार की रचनाओं से घनानन्द का वह व्यक्तित्व नहीं बनता है जिसके कारण हिंदी में वे अप्रतिम कहे जाते हैं। (2) अपनी मुख्य रचनाओं में घनानन्द इस प्रकार की बातों को महत्व नहीं देते। वे केवल वियोगी की पीड़ा की अकर्थनीयता और मृत्यु के बाद भी प्रेमी की

1. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 462-63. 2. वही, पृ० 464।

आशावादिता पर ही जोर देते हैं। इस कथ्य को उनकी व्यंजनापूर्ण और विरोध-मूलक वचन वक्रता और भी तीव्र कर देती है। यह तीव्रता पाठक की जरा सी असावधानी से ऊहा जैसी लगने लगती है।

इस प्रकार धनानन्द के छंदों में आसव, मद और मद के प्रभाव से घूमते हुए नेत्र आदि के जो वर्णन हैं, उनके आधार पर दरबारी प्रभाव भी विद्वानों द्वारा देखा गया है। धनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के मीरमुश्शी (प्रायवेट सेक्रेटरी) थे, फलस्वरूप उन पर दरबारी वातावरण और मुगल रहन-सहन, आचार-विचार और सभ्यता की छाप का पड़ना स्वाभाविक था। धनानन्द के विरह वर्णन में दरबारी रंग-ढंग की भलक स्पष्ट है। उसमें कहीं मधुपान का वर्णन किया गया है तो कहीं बीणा की मीड़ का। इसी प्रकार लौड़ी, आदि शब्दों के व्यवहार भी मुसलमानी दरबार के वातावरण का सूचन करते हैं।¹

धनानन्द पर अपने परिवेश का प्रभाव विल्कुल नहीं था, ऐसा कहना तो उचित नहीं होगा, क्योंकि कोई भी रचनाकार अपने को परिवेश से पूरी तरह अलग नहीं रख सकता। कितु दरबार के मीरमुश्शी होने के नाते उन पर प्रभाव दूसरों से अधिक था, ऐसा मानना अनुचित है। बिहारी, पद्माकर की बात तो छोड़ दीजिए सूर तुलसी तक के काव्य में मुगल दरबारों का प्रभाव की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और गहरा है। पूरे मध्य-कालीनकाव्य पर मुगल दरबार की छाप देखी जा सकती है। यह अवश्य है कि कहीं वह गहरी है, कहीं एकदम हल्की। धनानन्द की प्रवृत्ति से मेल खाने वाली उनके हृदय की अकथ कथा को मौन की सक्षम भाषा में उतार देने वाली जो रचनाएं हैं उनमें इस प्रकार की छाप इतनी हल्की है कि उसका संधान बड़े यत्न से ही संभव है।

वैसे तो धनानन्द की 'इश्कलता' जैसी रचना में अथवा फारसी में मसनवी लिखने की मान्यताएं² उनके फारसी ज्ञान और फारसी प्रेम का प्रमाण हैं ही किंतु उनकी विरहानुभूति की विशेषता फारसी और सूफी प्रभाव से कहीं आगे की चीज है।

धनानन्द के वियोग में शास्त्रीय विरह दशाएं भी देखी जा सकती हैं।

1. अभिलाषा

धनानन्द के छंदों में वियोगी के मन और आँखों में भरी हुई लाखों अभिलाषाओं के संकेत बार-बार आते हैं।

1. रीति स्वच्छंदं काव्य-धारा, ४०, 463. 2. रीतिस्वच्छंदं काव्यधारा, ४० 462
धनानन्द ग्रंथावली, वाडमुख, पृ० 74 पर उद्घृत विहार उद्दीसा रिसर्च जर्नल।

उक्त पंक्तियों को उद्धृत करते हुए विद्वानों ने घनानन्द पर फारसी प्रभाव¹ स्वीकार किया है। इस प्रकार की छाया कहीं-कहीं और भी स्पष्ट हो जाती है :

1. अंतर आंच उसास तचै अति, श्रंग उसीजै उदेश की आवस । /
ज्यों कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सु धरै नहीं ध्यावस ॥

2. अधिक बधिक तें सुजानि रीति रावरी है, /कपट-चुगौ दै फिरि
निपट करौं बुरी ।/गुननि पकरि लै, निपांख करि छोरि देहु,
मरै न जियै, सो महा विषम दया-छुरी ॥

यहां पर वियोग की ज्वाला में सांसों का तप्त हो जाना और आवेगों की भाप में श्रंगों का उबलने लगना और पश्चाताप की उमस में जीव का तड़पना, तथा कृष्ण को बहेलिया बतलाकर पक्षी अर्थात् स्वयं का बिद्ध होना, पंखों का उखाड़ दिया जाना और उनकी दया की छुरी से अपने अधमरे होने आदि का जो जुगुप्साजनक व्यापार है वह और कुछ नहीं फारसी रंगत का ही परिणाम हैं ।²

इस छंद में घनानन्द की अपनी चीज है 'दया-छुरी' का प्रयोग। अति आक्रामक रूप वाले निठुर प्रिय की जो दया है वह छुरी का काम करती है जो 'गला काटना' है। गला काटने वाले को दया के संबंध में सोचना भी अव्यावहारिक है, लेकिन युद्ध के अतिरिक्त जिस पीड़ा का अन्य कोई उपचार न हो, उससे मुक्ति दिलाने वाली 'छुरी' दया की ही हो सकती है। लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती। वह दया-छुरी महा विषम है जो न जीते देती है, न मरने।

'इश्कलता' जैसी रचनाओं में तो शैली क्या वर्ण विषय तक को फारसी परंपरा से प्रभावित माना गया है। यहां पर माशूक का बेदरद होना, किशोर वय का (कमसिन) होना, उसकी श्रांखों के तीर से कवि का धायल होना, आशिक के हृदय पर दिलजान द्वारा छुरे का प्रहार किया जाना आदि बातें शुद्ध फारसी प्रभाव से ओतप्रोत हैं। आशिक-माशूक के तर्ज की ऐसी चर्चा घनानन्द की कृतियों में जगह-जगह और बार-बार देखी जा सकती है।

यहां केवल इतना काफी है कि (1) इस प्रकार की रचनाओं से घनानन्द का वह व्यक्तित्व नहीं बनता है जिसके कारण हिंदी में वे अप्रतिम कहे जाते हैं। (2) अपनी मुख्य रचनाओं में घनानन्द इस प्रकार की बातों को महत्व नहीं देते। वे केवल वियोगी की पीड़ा की अकथनीयता और मृत्यु के बाद भी प्रेमी की

1. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 462-63. 2. वही, पृ० 464।

आशावादिता पर ही जोर देते हैं। इस कथ्य को उनकी व्यंजनापूर्ण और विरोध-मूलक वचन वक्ता और भी तीव्र कर देती है। यह तीव्रता पाठक की जरा सी असावधानी से ऊहा जैसी लगने लगती है।

इस प्रकार धनानन्द के छंदों में आसव, मद और मद के प्रभाव से घूमते हुए नेत्र आदि के जो वर्णन हैं, उनके आधार पर दरबारी प्रभाव भी विद्वानों द्वारा देखा गया है। धनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के मीरमुंशी (प्रायवेट सेक्रेटरी) थे, फलस्वरूप उन पर दरबारी वातावरण और मुगल रहन-सहन, आचार-विचार और सभ्यता की छाप का पड़ना स्वाभाविक था। धनानन्द के विरह वर्णन में दरबारी रंग-दंग की भलक स्पष्ट है। उसमें कहीं मधुपान का वर्णन किया गया है तो कहीं वीणा की मीड़ का। इसी प्रकार लौड़ी, आदि शब्दों के व्यवहार भी मुसलमानी दरबार के वातावरण का सूचन करते हैं।¹

धनानन्द पर अपने परिवेश का प्रभाव विल्कुल नहीं था, ऐसा कहना तो उचित नहीं होगा, क्योंकि कोई भी रघनाकार अपने को परिवेश से पूरी तरह अलग नहीं रख सकता। किन्तु दरबार के मीरमुंशी होने के नाते उन पर प्रभाव दूसरों से अधिक था, ऐसा मानना अनुचित है। बिहारी, पद्माकर की बात तो छोड़ दीजिए सूर तुलसी तक के काव्य में मुगल दरबारों का प्रभाव की अपेक्षा अधिक स्पष्ट और गहरा है। पूरे मध्य-कालीनकाव्य पर मुगल दरबार की छाप देखी जा सकती है। यह अवश्य है कि कहीं वह गहरी है, कहीं एकदम हल्की। धनानन्द की प्रवृत्ति से मेल खाने वाली उनके हृदय की अकथ कथा को मौन की सक्षम भाषा में उतार देने वाली जो रचनाएं हैं उनमें इस प्रकार की छाप इतनी हल्की है कि उसका संधान बड़े यत्न से ही संभव है।

वैसे तो धनानन्द की 'इश्कलता' जैसी रचना में अथवा फारसी में मसनवी लिखने की मान्यताएं² उनके फारसी ज्ञान और फारसी प्रेम का प्रमाण हैं ही किन्तु उनकी विरहानुभूति की विशेषता फारसी और सूफी प्रभाव से कहीं आगे की चीज है।

धनानन्द के वियोग में शास्त्रीय विरह दशाएं भी देखी जा सकती हैं।

1. अभिलाषा

धनानन्द के छंदों में वियोगी के मन और आँखों में भरी हुई लाखों अभिलाषाओं के संकेत बार-बार आते हैं।

1. रीति स्वच्छंद काव्य-धारा, ४०, 463. 2. रीति स्वच्छंद काव्यधारा, ४० 462 धनानन्द ग्रंथावली, वाडमुख, पृ० 74 पर उद्धृत विहार उड़ीसा रिसर्च जर्नल।

1. अभिलाषनि लाखनि भांति भरे, हियरा-मधि सांस सुहावति ना ।
2. चिर जी जै दीजै सुख कीजै मन-भायो मेरो, /मेरी अभिलाखन की निधि को घरत है ।
3. अभिलाषनि लाखनि भांति भरी बरनीन रुमांच हँै कांपति हैं ।
जब तें तुम आवनि औधि बदी, तब तें अंखियां मग मापति हैं ।
4. मूरति रिंगार की उजारी छबि आछी भांति, दीठि लालसा के लोयननि लैलै आंजि हैं । /रति-रसना-सवाद पांचड़े पुनीतकारी,/ पाय चूमि-चूमि के कपोलनि सौं मांजिहैं ।/जान प्यारे प्रान अंग-अंग रचि रंगनि में, बोरि सब अंगनि अनंग-दुख मांजिहैं । कव घनआनन्द ढरीही बानि देखें सुधा, हेत मन-घट-दरकनि सुठि रांजि हैं ॥

[मन में (वियोग के कारण) पड़ी हुई दरार को जोड़ने के लिए प्रिय की द्रवणशीलता का उपयोग काव्य की दृष्टि से अद्भुत है ।]

5. अभिलाषनि पूरति हँै उफन्यौ मन तें मनमोहन पाय हौ जू ॥

इस प्रकार की अभिलाषाओं के व्यक्त करने वाले चित्र घनानन्द के छंदों में सैकड़ों की संख्या में हैं ।

2. चिता

अपनी असहनीय व्यथा के विषय में सोचना और किसी तरह प्रिय को पाने के उपायों के संबंध में चिता अनेक छंदों में व्यक्त हुई है । उपायों में विस्तार नहीं है, न बहुत उछल कूद है । गंभीर व्यथा के अनुरूप ही चिता की अभिव्यक्ति भी हुई है ।

1. घनआनन्द ऐसी दसानि थिर्यौ दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै ।

अब ऐसी भई उन जान हर्ई दर्हि कक करौ पै न कोऊ सुनै ॥

इस प्रकार की चिता उनके छंदों में सर्वत्र है । एक छंद में प्रयत्न की अत्युक्ति जैसी दिखाई पड़ती है :

आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं हिय का बिधि धीरौं ॥...

पाऊं कहां हरि हाय तुम्हें, घरनी मैं धूसौं कि अकासहि चीरौं ॥

कितु इस प्रकार के कथन में सचमुच धरती आकाश को चीरने की बात नहीं कही गई है। वस्तुतः सामान्य प्रयत्नों की विफलता व्यंजित है कि करणीय प्रयत्न तो व्यर्थ हो गए। अब क्या करूँ कि तुम्हें पाऊँ? धरती में घंसना या आकास फाड़कर उसमें प्रवेश कर जाना एक तो संभव नहीं दूसरे उसके बाद भी तुम मिलोगे इसका निश्चय नहीं।

3. स्मृति

विरह की यह दशा धनानन्द के छंदों में सबसे अधिक व्यक्त हुई है। पहले कहा जा चुका है कि प्रिय के रूप, यौवन और उससे मिलने वाले अद्भुत आनंद का अभाव ही धनानन्द की उत्कट पीड़ा का कारण है। बार-बार संयोग की (सघन आनंद देने वाले क्षणों की) स्मृतियाँ आकर उनके वियोग दुख को बढ़ाती हैं। एक-एक रोम से प्रिय के नैकट्य का सुख भोगने वाले को अब प्रिय से इतनी दूरी पर रहना पड़ रहा है कि वह अलंध्य है। पहले वस्त्राभूषणों की दूरी भी सह्य नहीं थी, अब अलंध्य पहाड़ों की दूरियाँ हैं:

तब हार पहार से लागत है अब आनि के बीच पहार परे।

इस प्रकार की तुलना स्मृति के कारण ही संभव है। वही स्मृति इनकी वेदना के मूल में है। उधर प्रिय है कि उसके हिस्से में भूलना ही पड़ गया है :

इत बांट परी सुधि रावरे भूलनि कैसो उराहनो दीजिएजू॥

सुधि और भूला देने की आदत दो गुण हैं जिनमें से एक-एक प्रेमी और प्रिय के हिस्से में पड़ गए हैं। प्रिय की सुधि प्रेमी के हिस्से में पड़ी है और प्रेमी को भूला देना प्रिय के हिस्से में।... प्रिय की वह स्मृति पसलियों में घंसे हुए तीर की तरह कसकती है :

प्रीतम की सुधि अंतर में कसकै सखि ज्यों पंसुरीनि में गांसी॥

‘आलम और धनानन्द ने स्मृतिकथन के प्रसंग में उन रम्य प्राकृतिक स्थलों को सामने रखा है जहाँ नायक-नायिका का मिलन होता था। इनको देखने मात्र से इन कुंजों और करील वनों के साथ लिपटी हुई सारी सुखद स्मृतियाँ एक-एक कर स्मृतिपटल पर अंकित हो जाती हैं:’¹

वैर्झ कुंज पुंज जिन तरें तन बाढ़त हो,/ तिन छांह आए अब गहन

सो गहिंगौ।/ सुरति-सुजान-चैन-बीचिन सौं सौंची जिन,/ वही

जमुना, पै हेली, वह पानी बहिंगौ॥

कुंजों की वह छाया न रह गई। जमुना का वह पानी वह गया, जो सुजान की रति से मिलने वाले सुख की लहरों से सौंच देता था।

स्मृति के मानसिक पक्ष पर धनानन्द का ध्यान अधिक है। यही कारण है:

1. डा० बच्चन तिहः : रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना पृ० 252.

कि उनका विरह-वर्णन दूसरों की अपेक्षा अधिक मर्मवेदी है।

4. गुणकथन

प्रिय के गुणों की चर्चा करके अपने विरह-दुख की वृद्धि कर लेना वियोगी हृदय का सामान्य लक्षण है। घनानन्द में प्रिया के रूप सौहर्य और उससे प्राप्त होने वाले परम सुख की चर्चा बार-बार आई है। वियोग में प्रिय से प्राप्त होने वाले सुखों से वंचित वियोगी को उसके उन गुणों के साथ ही अब उस प्रिय की निठुराई की बात व्यान में आती है। प्रिय अब अपने गुणों को भूल गया है किंतु उसके अगाध गुणों का स्मरण करके वियोगी अब भी आशान्वित हो उठता है :

मनमोहन तौ अनमोह करौं, यह मोहित होत फिरै सु कहा ।

अरु जौ अपदार ढरै न ढरै, गुनव्यौं तकि लागत दोष महा ॥

हे प्रिय, निठुराई तुम्हारा स्वभाव नहीं है। इस समय तुम निठुर बन गए हो। प्रिय के गुणों पर प्रेमी को इतना अगाध विश्वास है कि अपने मरने से अधिक चिता उसे इस बात की है कि मेरे मर जाने पर प्रिय को लोग निठुर, स्नेहहीन कहेंगे :

पै तुम्हें मति कोऊ कहौ हितहीन, सु या दुख बीच अमीच करै ।

प्रिय के गुणों की माला वियोगी निरंतर जपता रहता है :

बिसरै छिन जो सु करै सुवि तो, गुन-माल बिसाल गुनै गनही ।

उन गुणों को सहज स्वभाववश धारण करने वाला प्रिय एक बार अपने गुणों को स्मरण कर ले तो उसकी आरोपित निठुराई सहज ही छूट जाएगी !

5. उद्वेग

सुख देने वाली वस्तुओं से जब दुख मिलने लगता है, तब वियोगी की वह दशा उद्वेग की दशा कहलाती है। इसके अंतर्गत कवियों ने प्रायः प्रचलित उड़ीपनों (चन्द्र, पवन, कुंज, कोयल, चातक आदि) तथा सुख विलास की सामग्री का उल्लेख किया है जो संयोग में जितने अनुकूल लगते हैं, वियोग में उतने ही प्रतिकूल। इस प्रकार की उद्वेग दशा रूढ़ि बन कर रह गयी है।

घनानन्द ने उद्वेग की गंभीर दशा का चित्रण किया है, किंतु परंपरापालन मात्र के लिए उन्होंने वस्तु-परिगणन कहीं नहीं किया है। उद्वेग वर्णन में भी उनकी दृष्टि विरह वेदना की तीव्रता पर ही लगी रहती है :

अंतर उदेग दाह, आंखिन प्रवाह आंसू/देखी अटपटी चाह

भीजनि दहनि है ।/सोइबो न जागिबो हो, हसिबो न रोइबो हूँ,/

खोय खोय आप ही में चेटक लहनि है ।

वियोगी की विकलता इतनी अधिक है कि जैसे वह साकार आकुलता के ही

हाथों में पड़ गया है :

अकुलानि के पाति पर्यौ दिन रातिसु ज्यौ छिनको न कहुं
बहरै । /फिरबोई करे चित चेटक चाक लौं धीरज को ठिकु क्यौं
ठहरै ।

एक पल भी चैन नहीं है । उधर चांदनी जो अरती आकाश को एक किए हुए
है, आग की तरह वियोगी को जलाती है :

है बिपरीत महा घनआनन्द अंवर तें धर कोंकर लाई । /जारति
अंग अनंग की आंचनि जोन्ह नहीं नु नई अगिलाई ॥

कहीं चांदनी प्रलय-समुद्र की तरह बढ़कर वियोगिनी को डबानी है :

जोहू प्रलैं के पयोनिधि लौं बिदैरिनि आजु वियोगिनि बौरे ।
कोयल, मोर और पपीहा प्राणों के लिए संकट बने हुए हैं :

कारी कूर कोकिला कहां को बैर काढति री, /कूकि कूकि अवहीं
करेजो किन कोरि लै । / पैड परे पापी ये कलायी निसि द्यौस
ज्यों ही, /चातक रे धातक ह्वै तू ही कान फोरि लै ॥

एक छंद में रीतिबद्ध कवियों के समान संयोग में अनुकूल लगने वाली
वस्तुओं की गणना है जो वियोग में दुखदायी हो गई हैं :

सुधा तैं स्वत विष, फूल मैं जगत सूल, /तम उगिलत चंद, भई
नई रीति है । / जल जारै अंग और राग करै सुरभंग, /संपति
विपति पारै बड़ी विपरीति है । /महागुन गहै दोषे, श्रीषद हूं
रोग पोषै, / ऐसे जान रस माहि विरस अनीति है । /दिनन को
फेर मोंहि, तुम मन केरि डार्यौ, / अहो घनआनन्द ! न जानै
कैसे बीति है ।

उद्वेग-दशा में प्रकृति के उपकरणों की प्रतिकूलता जगजाहिर है, उनकी
गणना यहां भी है किंतु छंद में एक संकेत बहुत व्यंजक है । ‘महागुन गहै दोषै,
श्रीषद हूं रोग पोषै’—जो महागुन हैं वे सब के सब दोष (उसी अनुपात में महा
दोष) हो गए हैं और दोष-निवारण के लिए जो श्रीषदवियां हैं वे सब रोग-
विनाश करके शरीर-पोषण करने के स्थान पर रोग का ही पोषण कर रही हैं ।
विरह-ताप के लिए शीतोपचारों की व्यर्थता के क्रम में उनकी प्रतिकूलता
व्यंजित करने वाली यह कलात्मक शक्ति है ।……कहीं वियोगिनी प्रवासी प्रिय
को संबोधित करके कहती है कि मेरे प्राणों के बहुत से ग्राहक तैयार हो गए हैं,
ये ताण तुम्हारी धरोहर हैं । आकर इन्हें सम्हालो, नहीं तो ये ग्राहक इन्हें ले
जाएंगे । ये प्राणों के ग्राहक वे ही हैं जो संयोग में सुखद थे :

मौं अबला तकि जान, तुम्हें बिन, मौं बल कै बलकै जु
बलाहक । त्यौं दुख देखि हंसे चपला, अरु पौन हूं दूनो विदेह तें
दाहक ॥

6. प्रलाप

दुख की अधिकता के कारण अव्यवस्थित, अटपटी बातें करना प्रलाप कहलाता है। घनानन्द ने इस विरह दशा का वर्णन नहीं किया है, जो उनकी गंभीरता के अनुरूप ही है। उनका संपूर्ण विरह-वर्णन दियोग-विह्वल प्रेमी की उक्ति के रूप में हुआ है इसलिए उसमें प्रलाप की संभावना नहीं रह जाती। अनेक छंदों में ऐसी स्थितियाँ संकेतित हैं जिनमें प्रेमी हार-हाय करता धूम रहा है:

ऐसे घनआनन्द विह्वल न बसाय दाय, / धीरज बिलाय बिलाय
किरो हाय हाय।

7. उन्माद

जड़-चेतन में भेद करने की शक्ति की समाप्ति को उन्माद दशा कहते हैं। विरही प्रायः चेतन-अचेतन में भेद न करके (मेघ जैसे जड़ से भी) अपनी कातर अवस्था का निवेदन करते पाए जाते हैं। घनानन्द ने बावले होने का संकेत बार-बार दिया है। एकाध छंदों में वियोग की उन्माद दशा का चित्रण स्वाभाविक रूप में हुआ है। घनानन्द द्वारा वर्णित 'उन्माद' में किसी एक स्थिति का कथन न करके जिन अनेक स्थितियों का कथन किया गया है उनसे उन्माद में एक नाटकीयता आ गई है। उसके परिणामस्वरूप इस दशा का मूर्त रूप उपस्थित हो गया है। उन्माद की एक दूसरी मनोवैज्ञानिक स्थिति भी है। इस दशा में कभी तो व्यक्ति अचेतन स्थिति में होता है और कभी चेतन। 'अंकभरौ' में नायिका की अचेतन दशा उन्माद का क्षण है। 'चकि चौंकि परौ' में प्रिय को न पा चकमका कर चौंक पड़ने की चेतन दशा।¹

अंक भरौ, चकि चौंकि परौ, कबहूंक लरौ छिनही में मनाऊँ।/
देखि रहौ, अनदेखे दहौं, सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊँ।/
जान ! तिहारी सौं मेरी दसा यह को समुझै अरु काहि
मुनाऊँ।/यों घनआनन्द रैनि दिना न वितीतत, जानियै कैसे
बिताऊँ॥

8. व्याधि

दीर्घ निःश्वास, अत्यधिक दुर्बलता और पांडुरता आदि का वर्णन व्याधि के अंतर्गत आता है। इस प्रकार की दशाएं घनानन्द के अनेक छंदों में मिलती हैं:

- जियरा उड़्यौ सो डोलै हियरा धक्योई करै, /पियराई छाई तन,
सियराई हौं दहौं।

1. रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, पृ० 253.

2. कहाँ ऐसी रांचनि हरदि केसु केसरि में,/जैसी पियराई गति
पानियै रहति है ।

एक छंद में वियोगिनी के पीले पड़ गए शरीर के लिए फूलों से भरी हुई तुरई की लता का उपमान प्रस्तुत है । तुरई के फूल खूब पीले हतते हैं । बहुत से फूल एक साथ खिलते हैं तो लता का हरा रंग ढक जाता है । पीला-पीला ही दिखाई देता है । छंद की विशेषता यह है कि पीले रंग का नाम कहीं नहीं लिया गया है, केवल खिली हुई तुरई से पीलापन व्यंजित है :

बलि नेकु मया करि हेरो हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ॥

पत्रलेखन के संदर्भ में शरीर ताप का वर्णन परंपरा से प्रभावित लगता है :

पाती मधि छाती छत लिखि न लिखाए जाहि,/काती लं बिरह
घाती कीने जैसे हाल हैं ।/आंगुरी बहकि तहीं पांगुरी किलकि
होति,/ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं ।/जान प्यारे
जौड़ब कहूं दीजियै संदेसो तौड़ब/आवा सम कीजियै जु कान
तिहिकाल हैं ।/नेह-भीजी बातें रसना पै उर-आंच लागें,/जागै
घनआनन्द ज्यों पुंजनि मसाल हैं ॥

अंतर यह है कि दीर्घ निःश्वास के साथ विरहिणी, विहारी की नायिका की भाँति, छः सात हाथ आगे और पीछे भूलती हुई नहीं दिखाई गई है । इस छंद में अत्युक्ति तो है किन्तु संदेश की अकथनोयता और अश्रवणीयता के लिए जो संकेत है वह बहुत व्यंजक है । प्रिय को संदेश दिया जाय तो पहले कानों को (कुम्हार के) आवां की तरह कर लेना पड़ेगा क्योंकि कहते हुए वे शब्द अपने कान में भी पड़ेगे । दूसरे प्रिय के कानों को भी वे शब्द अपनी आंच से जलाएंगे, इसके लिए विरही तैयार नहीं है । संदेश की बातें जीभ पर आती हैं तो मशालों के पुंज की तरह जल उठती हैं क्योंकि नेह से भीगी हुई (तेल चुपड़े कपड़े की तरह) वे बातें हैं, ऊपर से हवा के भोके (सांसों के) लगते हैं । इन मशाल पुंजों को प्रिय के पास कैसे भेजा जाय ?

9. जड़ता

शरीर के अंगों का तथा मन का चेतनाशून्य हो जाना जड़ता है जिसका वर्णन घनानन्द में बहुत कम है । उनका प्रेमी मन तो कभी चेतना शून्य होता ही नहीं । शरीर की समाप्ति के बाद भी जो मन आशा को नहीं छोड़ना चाहता, वह शरीर रहते चेतनाशून्य कैसे होगा ? नेत्रों के खुले रहने का वर्णन कुछ छंदों में अवश्य हुआ है :

1. रैनि-द्यौस जागै ऐसी लगी जु कहूं न लागै,/पन अनुरागै पागै
चंचलता चै गई ।

2. नितहीं अंखिया उधरी बरसे ।
3. उजरनि बसी है हमारी अंखियानि देखो, सुबस सुदेस जहां भावते बसत हौं ।

किन्तु इन चित्रों में वह 'जड़ता' नहीं है जिसका वर्णन परंपरागत रूढ़ रूप में हुआ है :

कौड़ा-आंसू-बूद कसि सांकर-बरुनी-सजल ।/कीने बदन निमूंद
दृग मलांग डारै रहत ।—बिहारी

10. मरण

वियोग में मरण का वर्णन वैसे भी स्वाभाविक रूप में ग्राह्य नहीं है । यह का विच्छेदक होने के कारण उसे निषिद्ध ही माना गया है । दूसरे घनानन्द की प्रेम परिकल्पना में मरण को इसलिए भी स्थान नहीं है कि प्रेमी मृत्यु को जीतने का धैर्य रखता है । मीन और पतंग जो प्रेम की अतिशयता के कारण मृत्यु का वरण करते हैं, उनको घनानन्द कायर कहते हैं । वे उस पीड़ा का स्वर्ण भी नहीं कर सकते :

बिछुरे मिले मीन पतंग दसा कहां सो जिय की गति को परसे ॥

मीन और पतंग मृत्यु का वरण करके प्रेम की जिस पीड़ा से मुक्ति पा लेते हैं उसी पीड़ा को भेलने का धैर्य घनानन्द में है । यही कारण है कि वियोगी के प्राण निकलते समय भी आंखों में प्रिय दर्शन की आशा से अटक कर रह जाते हैं । इतना ही नहीं—मृत्यु ही ऐसे वियोगी के लिए मर गई है :

बनी है कठिन महा, मोहिं घनग्रानंद यौं/मीचौं मरि गई¹
आसरो न जित ढूकियै ॥

मृत्यु कभी आती भी है तो प्रिय दर्शन की तीव्र लालसा, जो वियोगी के हृदय में है, उसके सापने हार जाती है और वियोगी के प्राण प्रस्थान करने के बाद भी लौट आते हैं :

जानि ग्रनखौहीं बानि लाडिले सुजान की सु, करि हूं पयान
प्रान फेरि-फेरि जात हैं ॥

इस प्रकार घनानन्द की विरहानुभूति न सिर्फ शास्त्रोक्त विरह-दशाओं की सीमा पार कर जाती है, वह अपनी अकथ गंभीरता में मृत्यु का भी अतिक्रमण कर जाती है । विचित्रता यह है कि इतने पर भी अस्वाभाविकता कहीं उनके विरह-वर्णन में नहीं आती ।

पवनदूत, मेघदूत, उपालंभ, विषम प्रेम का कथन, भाग्य का दोष, (इतने पर भी) प्रिय के लिए आशीष-वचन आदि संपूर्ण परंपरागत पद्धतियों के एकाध

छंद घनानन्द में मिल जाते हैं किंतु इन सबसे उनके द्वारा वर्णित गंभीर विरह-व्यथा में न तो किसी प्रकार की कृत्रिमता आती है न कोई हल्कापन आने पाता है।

उनके छंदों का अंतिम प्रभाव यही होता है कि प्रेमानुभूति की तीव्रता और विरहानुभूति की अकथ गंभीरता जैसी घनानन्द में मिलती है, वैसी रौतिकालीन अन्य कवियों में नहीं।

प्रेम के संबंध में धनानन्द की अवधारणा

रीति स्वच्छांद कवियों के जिस वर्ग में आचार्यों ने धनानन्द को रखा है उस वर्ग के कवियों के प्रेम की विशेषताएँ बताते हुए प्रायः स्वीकार किया गया है कि 'इनका (स्वच्छांद धारा वाले कवियों का) प्रेम मुख्यतः अशारीरी और मानसिक है। वैयक्तिकता के प्रभाव के कारण इनके प्रेम संबंधी दृष्टिकोण को रौमैटिक प्रेम की संज्ञा दी जा सकती है'।¹

रूप-वर्णन और संयोग के संदर्भ में यह स्पष्ट हो चुका है कि धनानन्द का प्रेम मानसिक तो है किंतु अशारीरी उसे नहीं कहा जा सकता। पहले रूप और यौवन की ओर आसक्त प्रेमी प्रिय के शरीर और एक-एक अंग की गति पर मुख्य हुआ। फिर संयोग का अवसर पाकर वह उस सौंदर्य का भोग शुद्ध शरीर के स्तर पर करता रहा। जब उस प्रिय की शारीरिक रूप में, प्राप्ति संभव नहीं रह गई (मन में तो वह निरंतर विद्यमान है ही) तो प्रेमी का कष्ट बढ़ गया। मूलतः वह कष्ट शरीर का है, एक-एक अंग का है जिन्होंने प्रिय का साहचर्य-सुख भोगा है। इस बात को अभिलाषा वाले चित्रों में देखा जा सकता है:

'मूरति सिंगार की उजारी छवि आछी भाँति,/दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहीं।/रति-रसना-सवाद-पांचडे पुनीत-कारी,/पाय चूमि-चूमि कै कपोलन सों मांजिहीं।/जान प्यारे प्रान अंग अंग रुचि रंगनि में,/बोरि सब अंगनि अनंग दुख भाँजिहीं।/कब धनधाननंद ढरौंहीं बानि देखे सुधा,/हेत मन-घट-दरकनि सुठि रांजिहीं।'

एक-एक अंग की ललक शरीर के स्तर पर ही अभिलाषा की प्रगाढ़ता सूचित करती है। प्रस्तुत छंद में अभिलाषा को मानसिक और शारीरिक रूप में

1. रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० 256.

मूर्तिमान किया गया है। विरही प्रिय (आलंवन) के रूप-ऐश्वर्य को अपनी संपूर्ण इंद्रियों से भोगने की उत्कट कामना से परिचालित है। प्रिय की दृष्टि, उसके पांच, उसके एक एक अंग का सौंदर्य और सबसे ऊपर प्रिय के चित्त की द्रवणशीलता, विरही की उत्कट अभिलापा के आधार हैं। प्रिय के एक-एक अंग के विशेष रंगों में अपने को डुबाकर विरही अनंग का जो दुख भोग रहा है, उससे मुक्त होने की कामना करता है। ऐंद्रियता का अति मुख्य रूप पांचों के विशेषण में भलकता है। रति-रसना-स्वाद के पांचड़े के रूप में पांचों को देखने वाले कवि की दृष्टि को केवल मानसिक श्रुंगार तक केंद्रित मानना सर्वथा अनुचित है। अन्य छंद में घनानन्द पांचों की ही कामना करते हुए उन्हें 'केलिकला-कंदिर' और 'विलास निधि-मंदिर' कहते हैं। साथ ही यह भी कहते हैं कि इन्हीं पांचों के बल पर मैं मनोज सिंधु का संतरण करता हूँ। रति-रसना के स्वाद के पांचड़े में स्पष्ट व्यंजना प्रिया के पांचों को चूमने से आरंभ की गई रति-कीड़ा के उदास आवेग की है। इसी छंद में अंतिम पंक्ति में मनहृषी घड़े की दरारों को मूंदने की प्रक्रिया का वर्णन अत्यंत काव्यात्मक है। तांवे या फूल-कांसे के बर्तन में जो दरार पड़ जाती है उसे रांगे को पिघलाकर उसी से जोड़ा जाता है। इस क्रिया को बर्तन रांगना या रांजना कहते हैं। प्रिय का चित्त द्रवणशील है। विरही को विश्वास है कि मेरे प्रखर ताप से वह पिघलेगा अवश्य। फिर वही द्रवित चित्त मेरे दूटे हुए मन को जोड़ेगा। अन्य कोई उपाय इसके लिए नहीं है।

घनानन्द का प्रेम केवल मानसिक प्रेम कभी नहीं रहा है। उसकी प्रगाढ़ता सदैव मानसिक रूप में प्राप्त प्रिया को शारीरिक रूप में प्राप्त करने को लालायित रहती है। आंखों को रूप-वाहक कहा गया है। सूरदास की गोपियां विरह-बेलि बोने के लिए नेत्रों को कोसती हैं :

इन नैन विरह की बेलि बई। / सींचत नैन नीर के सजनी मूर
पताल गई ॥—सूरसागर

घनानन्द के विरह-व्याकुल प्रेमी को मन से यही शिकायत है कि प्रिया को उसने वहीं बिठा लिया है। नेत्रों के सामने (सशरीर) प्रिय को कभी उपस्थित नहीं करता :

नैन कहै सुनि रे मन, कान दै क्यों इतने गुन मेटि दयौ है। /
सुंदर प्यारे सुजान को मंदिर बावरे तू हमहीं ते भयो है। /
लोभी तिहै तनको न दिखावत ऐसो महामद छाकि गयो है। /
कीजियै जू घनआनन्द आय कै पाय परों यह न्याय नयौ है॥

आंखों का और मन का भगड़ा ही यही है कि प्रिय के रूप से परिचय कराया आंखों ने और अब मन ने अपने को उस रूप का मंदिर बना लिया है (प्रिय मन मंदिर में है, किन्तु उसे बाहर देखने की ललक आंखों को है)। जिस

माध्यम (नेत्रों) से मन को यह अवसर मिला, उन्हीं नेत्रों को मन ने बंचित कर दिया है। प्रिय का प्रत्यक्ष दर्शन ही अभिष्ठ है।

घनानन्द का प्रेम शरीर के स्तर से ही आरंभ होता है और विरह में असाधारण तीव्रता के कारण भी (संपूर्णता के साथ प्राप्त) शरीर के अनुभव ही हैं। विशेषता यह है कि विरह-दुख की तीव्रता का जो प्रकाशन उनके छंदों में हुआ है वह शारीरिक दुख-ताप की ऊहात्मक रूढ़ियों से आगे बढ़कर दुख की सघनता के कारण मानसिक विकलता की वृद्धि की ही व्यंजना करता है। विरही के दुख का जो रूप छंदों में अभिव्यक्त हुआ है वह शारीरिक उछलकूद या जाड़े की रात में लू चलाने वाला अथवा गुलाबजल की शीशी की धारा को भाप बनाकर ऊपर से ही उड़ा देने वाला नहीं है। वह राग की प्रगाढ़ता के कारण प्रिय के अभाव में मिलने वाले कष्ट को अनिवार्य बना देता है। प्रिय का रूप असाधारण है। उसके प्रति आसक्ति उतनी ही तीव्र है। उससे मिलने वाला मुख वैसा ही अद्भुत आनंद देने वाला है। इसीलिए उसके न होने का दुख भी अकथ और अपरिसीम है। घनानन्द के वियोग की मार्मिक अभिव्यक्ति का रहस्य उनके पूरे प्रेम प्रसंग को एक साथ देखने पर ही खुलता है।

शारीरिक और लौकिक प्रेम किस तरह अलौकिक ऊँचाई प्राप्त करता है, यह घनानन्द के छंदों में व्यक्त हुआ है। लौकिक दृष्टि से आदर्श माने जाने वाले प्रेमी—मीन और पतंग—उस 'प्रीति-रीति' को नहीं समझ सकते जो 'इस' प्रेमी के लिए सहज ही ग्राह्य है। १ वे दोनों (मीन-पतंग) तो उस दुख से छूटने के लिए मृत्यु का वरण कर लेते हैं। यहां प्रेमी मृत्यु को पीछे छोड़ देता है। मृत्यु के बाद भी प्रिय-दर्शन की आशा रूपी रस्सी प्रेमी की उसांस के गले में पड़ी रह जाती है। वियोगी की वेदना को देखकर मृत्यु ही मर जाती है। वह अपनी उस अकथ व्यथा को झेलता रहता है।

घनानन्द के प्रेम को प्रायः प्रनुभयानिष्ठ¹ या विषम प्रेम² कहा गया है। विरह-वर्णन के छंदों में प्रेमी की दुर्दशा और प्रिय की निटुराई के संबंध में घनानन्द ने बहुत कुछ कहा है। उपालंभ की श्रेनक बातें बहुत से छंदों में मिलती हैं, जिनसे घनानन्द के विषम प्रेम का पता चलता है। इस विषमता से विद्वानों ने यहां तक निष्कर्ष निकाल लिए हैं कि : 'उनका निजी जीवन ही विरोधी और विषमताओं का जीवन रहा, सुख से उन्हें जैसे भेंट ही न हुई थी, कम से कम अंतःसाक्ष्य से तो यही प्रमाणित होता है। उन्हें सुजान की चाह थी और सुजान उन्हें न मिली, सुजान से उन्होंने सर्वतिम भाव से प्रेम किया पर उसने इनका साथ न दिया था यों कहिए कि इन्हें ठुकरा दिया।'³

1. रीतिकालीन कवियों की प्रेरणाजना, 256. 2. रीतिस्वच्छ वाक्यधारा, 243-248.
3. रीतिस्वच्छ वाक्यधारा, पृ० 243.

सौदर्य वर्णन और संयोग के संदर्भ में यह देखा जा चुका है कि धनानन्द का अनुभव उपर्युक्त कथन से भिन्न है। उन्हें प्रिया और उसके साहचर्य सुख की उपलब्धि असाधारण रूप में हो चुकी थी। उसी तृप्ति के अभाव में उनकी वियोग व्यथा इतनी असाधारण है। अतः इस प्रकार का निर्णय असंगत है कि धनानन्द को कभी सुख से भेट नहीं हुई। सुख से भेट न होने पर उसके अभाव में इतनी गहराई कभी नहीं आ सकती थी। संयोग के चित्र तो उनके संयोग सुख के प्रमाण हैं ही, वियोग के चित्र भी प्रकारान्तर से उनके असाधारण संयोग सुख के प्रमाण हैं। वियोग वर्णन में उनके प्रेम की विषमता उभर कर सामने आती है। परिस्थितियों का दबाव रहा हो या बाद में सुजान का प्रेम इनके प्रति कम हो गया हो, जो भी कारण हो, इन्हें वियोग दुख फैलना पड़ा। उसी दुख के कारण इनकी कविता इतनी मार्मिक हो सकी है।

वियोग में ही प्रेमी की (और प्रेम की भी) परीक्षा होती है। धनानन्द के मन का प्रेमी इस परीक्षा में पूर्णतः खरा उत्तरता है। वह इस क्षेत्र के अन्य आदर्शों (मीनता और शलभता) को बहुत पीछे छोड़ देता है :

प्रेम की अकथ पीड़ा की मधुरता सब लोग नहीं समझ सकते :

चाह मीठी पीर जिन्हें उठति अनन्दघन, / तैर्इ आंखें साखें और
पाखें कहा जानहीं ॥

सभी आंखें आंखों के आकार-प्रकार की तो होती हैं, उनमें वह प्रेम दृष्टि नहीं होती जो धनानन्द की विशेषता है। ऐसे स्तेही संसार में मिलते ही कहां हैं :

इकतौ जग-मांझ सनेही कहां, पै कहूं जौ मिलाप की बास'
दिलै । / तिहि देखि सकै न बडो विधि कूर, वियोग-समाजहि
साजि चलै । / धनआनन्द प्यारे सुजान सुनौ, न मिलौ तो कहौ मन
काहि मिलै । / अमिले रहिबो तै मिले तै कहा, यहि पीर मिलाप
में धीर गिलै ॥

धनानन्द यहां जिस प्रिय की बात करते हैं वह निठुर नहीं हो सकता। फारसी के शायरों के माशूक की तरह आशिक को तड़पाना उसकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती। कवि स्पष्ट कहता है कि संसार में प्रेमियों को स्तेही नहीं मिलते (सुंदर रूप वाले तो मिल सकते हैं) तुम मिल गए हो (स्पष्ट संकेत है कि प्रिय सुंदर तो है ही, स्तेही भी है) अब अगर तुम भी मिलाप (संयोग) में रुचि न लो, तो मेरा (प्रेमी का) मन क्या करे ?

धनानन्द अपने प्रिय को बार-बार जान, सुजान, जानराय, ढरकौंही बानि वाले (द्रवणशील चित्त वाले) कहते हैं, जिसका स्पष्ट संकेत है कि प्रिय की निठुराई परिस्थितिवश है, स्वभावगत नहीं है। प्रेमी को उसकी कोमलता का अनुभव भी प्राप्त हो चुका है। अब वियोग का दुख तब मिटे जब प्रिय आरोपित

कठोरता का त्याग करके पुनः अपने स्वभाव में आ जाय :

वरसौ घनआनन्द जीवन कौं सरसौं सुधि चातक छीनन की । /

मृदु तो चित के पन पै इत के निधि हौं हित के, सुचि मीनन की ।

और :

सब ही विधि जान, करौ सुखदान, जियावत प्रान् कृपा-तन हौं ।

ऐसा प्रिय स्वभाव का निठुर कैसे कहा जा सकता है ।

वियोग के दुसह दुख को भेलते हुए भी उसके 'कारण रूप' प्रिय को कठोर और निठुर स्वभाव के स्थान पर कोमल चित्त मानने वाली आशावादिता घनानन्द के प्रेम में ही हो सकती है । यहाँ पर उस प्रेम दृष्टि की विशेषता प्रकट होती है जो मीन और पतंग के पास नहीं है । वे दुख को देखकर प्राण त्याग देते हैं । यहाँ प्रेमी दुख की किसी सीमा को इतनी बड़ी नहीं मानता कि उसकी आशा समाप्त हो जाय ।

शारीरिक स्तर से आरंभ होकर इतनी सूक्ष्म मानसिक दशा तक पहुंचने वाला प्रेम निश्चय ही लौकिक प्रेम की सीमा से ऊपर उठ जाता है । पहले संकेत किया जा चुका है कि घनानन्द सूक्ष्मियों की तरह शारीरिक प्रेम के विकास की चरम परिणति के रूप में ही ईश्वरीय प्रेम को स्वीकार करते हैं । इस स्थल पर यह बताना उचित है कि घनानन्द की परिकल्पना में शारीरिक और ईश्वरीय प्रेम का संबंध अत्यंत मौलिक है । एक छंद में उन्होंने अपने लौकिक प्रेम (प्रिय के प्रति प्रेमी के भाव) का संबंध राधाकृष्ण के शाश्वत प्रेम से इस प्रकार स्थापित किया है :

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, विचार/बापुरो हहरि वार ही
तें किरि आयो है ।/ताही एक रस ह्वै विवस अवगाहै दोऊ,/नेही
हेरि राधा, जिन्हें देखें सरसायो है ।/ताकी कोऊ तरल तरंग
संग छूट्यौ कन/पूरि लोक लोकनि उफगि उफनायो है ।/सोई
घनआनन्द सुजान लागि हेत होत /ऐसे मथि मन पै सरूप
ठहरायो है ॥

विचार (ज्ञान-विवेक) बेचारा जिस प्रेम-पयोधि को देखकर किनारे से ही लौट आता है, वह सागर राधा और कृष्ण को देखकर पुलकित होता है जो एकरस हो-कर उस सागर का अवगाहन करते हैं । उसी प्रेम-पयोनिधि की एक बूँद छिटक कर संसार को भर देती है और उफन पड़ती है । वही (भाव) घनानन्द और सुजान के लिए हेत (प्रेम-लगाव) है, ऐसा स्वरूप (अपने प्रेम का) मन को मथ-कर (कवि ने) स्थिर किया है ।

इस छंद में दो बातें बहुत स्पष्ट हैं । पहली यह कि राधा और कृष्ण का प्रेम अलौकिक और दिव्य है । वह जिस सागर में अवगाहन करते हैं उसकी बूँद मात्र सारे संसार के लिए पर्याप्त है । वही सुजान और घनानन्द के लिए हेत (सांसारिक

प्रेम) के रूप में व्यक्त होता है। दूसरी यह है कि भक्ति के लिए घनानन्द को इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वे अपने मन के सांसारिक वासना-भाव का राधा और कृष्ण के नाम पर खुला वर्णन करें। रीतिकाल के अधिकांश कवियों की भक्ति पर यहीं कलंक है कि राधा और कृष्ण उनके लिए केवल नर और नारी के प्रतीक हैं। उनके लिए इन कवियों के मन में कोई भक्ति नहीं है। घनानन्द के साथ यह बात बिलकुल दूसरे रूप में लागू होती है।

यहीं पर यह कह देना आवश्यक लग रहा है कि कुछ विद्वानों ने घनानन्द के लौकिक और ईश्वरीय प्रेम को अलग करके नहीं देखा है जिसके परिणामस्वरूप शारीरिक आसक्ति को व्यक्त करने वाले प्रिया सुजान संबंधी छंदों के ऐंट्रिय रूप वर्णन को राधा के साथ जोड़ दिया गया है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छंद को लिया जा सकता है :

चातुर हँ रस-आतुर होहु न बात सयान की जात क्यों चूके । /

ऐसी अठाननि ठानत हौ कित धीर धरौ न परौ जिन डूके । /

देलि जियौ न छियौ घनानन्द कोंवरे अंग सुजान वधू के । /

चोली-चुनावट चीन्हैं चुम्हैं चपि होत उजागर दाग उदू के ।

इस छंद को डा० मनोहरलाल गौड़ ने अपने शोध प्रबंध में सांप्रदायित भक्ति के अंतर्गत राधा के लिए मानकर उद्धृत किया है।¹

यदि इस कथन को राधा के लिए स्वीकार किया जाए तो घनानन्द और रीतिकाल के अन्य कवियों में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। एक अन्य बात यह कहीं जा सकती है कि सांप्रदायिक मधुरोपासना में राधा-कृष्ण के लिए इससे भी अधिक खुले शृंगार का वर्णन है और घनानन्द की इस प्रकार की रचनाएं भी हैं। तब इसमें क्या आपत्ति है? आपत्ति यह है कि सुजान के विषय में कहे गए छंदों में घनानन्द की ऐंट्रिय दृष्टि बहुत साफ उभरती है अतः उनकी दोनों प्रकार की रचनाएं (शृंगार और भक्ति की) बिल्कुल अलग-अलग हैं। संप्रदाय वाली रचनाओं में कवि ने राधा का सीधे नाम लिया है। भक्त हो जाने के बाद घनानन्द कभी राधा की चोली की सिलाई के दाग उनके उरोजों पर देखने का इस रूप में वर्णन नहीं करते। इस संबंध में निवेदन है कि सुजानहित को घनानन्द के 'शृंगार' के अंतर्गत ही रख कर न्याय किया जा सकता है।

घनानन्द का प्रेम पूरी तरह लौकिक और शारीरिक है। उनका प्रेम पूर्ण गंभीर है। वियोग में प्रिय की निष्ठुरता के बावजूद पूर्णतः एकनिष्ठ है और शारीरिक स्तर पर पूर्णतः ऐंट्रिय (सेंसुप्रेस) हीते हुए भी गहरी मानसिकता लिए हुए है। यहीं घनानन्द के प्रेम की विशेषता है जो उनके वर्ग के कवियों से भी उन्हें अलग कर देती है। इस स्थल पर दो कवियों से घनानन्द की तुलना की जा सकती

1. घनानन्द और स्वचंद काव्यधारा, पृ० 416.

है। छायावाद के अंतर्गत प्रिय-विरह में मिलन का सुख प्राप्त करने वाली महादेवी बर्मा का प्रेम ऐंद्रियता का स्पर्श कहीं नहीं करता इसीलिए उसमें प्रखर व्यक्तिनिष्ठता का अभाव है। वह श्रृंगार काव्य के रूप में स्वीकार्य नहीं हो सकता, हालांकि उसमें विरह की चर्चा है। दूसरी ओर घनानन्द के परवर्ती किंतु उन्हीं के वर्ग में आने वाले कवि बोधा हैं जिनके प्रेम में ऐंद्रियता (सेंसुअरसनेस) इतनी स्थूल है कि उसका रंग घनानन्द के प्रगाढ़ राग के समक्ष फीका पड़ जाता है। बोधा राधा-कृष्ण के संभोग का वर्णन तो करते ही हैं यह भी कहते हैं कि :

यों दुरि केलि करै जग में नर घन्य वहै बनि है वह नारी ॥

बोधा में भी इतनी ईमानदारी है कि वे इस प्रकार की बातें भक्ति के आवरण में नहीं करते।

घनानन्द एक और प्रगाढ़ रागात्मकता के कवि हैं और दूसरी ओर अत्यंत सूक्ष्म मानसिक दशाओं के गायक। राधा और कृष्ण के जिस प्रेम को घनानन्द प्रेम-पर्योगि के रूप में देखते हैं, उसका वर्णन वे अन्तर्ग राधा-कृष्ण या कृष्ण-गोपिका प्रसंग में करते हैं, अथवा भक्ति के रूप में भगवान् कृष्ण की कृपा का उल्लेख करते हुए अपनी याचना प्रस्तुत करते हैं। इस संबंध में अन्यत्र विचार किया जायगा।

यहां यही देखना अभीष्ट है कि घनानन्द का लौकिक प्रेम ईश्वरीय प्रेम से कहां और किस रूप में जुड़ता है। ऊपर यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि उनकी मान्यता के अनुसार ईश्वरीय प्रेम के सागर की एक बूद ही सांसारिक प्रेम के रूप में अभिव्यक्ति पाती है। किंतु इससे उनके द्वारा गृहीत लौकिक प्रेम (अपने और प्रिया सुजान के संबंध) में कोई ऐसी बात नहीं आती जिससे वह शुद्ध शाकाहारी (केवल भक्तों के काम का) प्रेम बन कर रह जाय। घनानन्द ने अपनी भक्ति-भावना को अलग रखने का संयम साध लिया है, इसीलिए उनके द्वारा चित्रित शारीरिक प्रेम पूर्ण प्रगाढ़ता और रागदीप्ति के साथ प्रकाशित हो सका है :

राधा हरि, हरि राधिका, बनि आये संकेत । /दंपति रति-

विपरीत-सुख, सहज सुरति हूँ लेत ॥—विहारी

इस प्रकार के विपरीत रति के चित्रण में अपनी आकांक्षा को भक्ति के नाम पर राधा और कृष्ण के प्रचलित आवरण में ढंकने की आवश्यकता घनानन्द को नहीं थी। यही कारण है कि घनानन्द की सुजान संबंधी रति और कृष्ण संबंधी भक्ति दोनों अत्यंत मार्मिक रूप में उनके छंदों में व्यक्त हुई हैं, इस विशेषता के साथ कि कोई किसी को प्रभावहीन नहीं करती। घनानन्द कृष्ण के प्रसंग में उनकी कृपालुना की ही बात पर जोर देते हैं। राधा या गोपियों के साथ जिन छंदों में कृष्ण का संबंध संकेतित है, वहां भी संभोग के संकेत नहीं हैं। उनके परस्पर उफनते हुए प्रेम की झलक देना ही कवि पर्याप्त समझता है। भक्ति की भावना घनानन्द की प्रेम भावना को प्रभावित करती है तो इसी रूप में कि भक्ति की

तरह ही घनानन्द के लौकिक प्रेम में भी तन्मयता, अनन्यता और विना प्रतिदान के अपने प्रेम पथ पर दृढ़ रहने की अदिगता आ गई है। इसी बात को इस रूप में भी कहा जा सकता है कि घनानन्द का प्रगाढ़ और अनन्य प्रेमानुभव कृष्ण के प्रति उनके मन के समर्पण भाव को अंत में प्रेमाभित में बदलने में सहायक हुआ है। यही कारण है कि लौकिक प्रेम के अन्य रीतिकालीन गायकों की अपेक्षा घनानन्द की प्रेमानुभूति अधिक गहरी और सूक्ष्म दिव्याई पड़ती है। घनानन्द के लिए प्रेमानुभव और काव्यसर्जन की प्रक्रिया दो पृथक्-पृथक् स्थितियाँ नहीं हैं। उनका प्रेम के रस से लबालब भरकर छलकता हुआ हृदय काव्य का प्रवाह निरंतर बनाए रखता है। इसी स्थिति की सूचना वह यह कह कर देते हैं :

लोग हैं लागि कवित बनावत मोहि तो खेरे कवित बनादत ॥

इस प्रेम दृष्टि (या काव्य दृष्टि) को साधारण आंखें नहीं पहचान सकतीं। यह प्रेम मार्ग जिस पर ऐसा प्रेमी चल रहा है, बहुत सीधा है। कहीं भी इधर उधर देखना! इसमें निषिद्ध है, किन्तु जो कपटी है, निःशंक (ईमान वाले) नहीं हैं, वे इस मार्ग पर नहीं चल सकते :

अति सूधो सनेह को मारग है जर्ह नेकु सयानप बांक नहीं ।

तहां सांचे चलै तजि आपनपौ भर्झकै कपटी जे निसांक नहीं ।
 'आपनपौ' को छोड़कर चलने की जो शर्त इसमें है वही इस प्रेम दृष्टि को सामान्य लौकिक प्रेम दृष्टि से अलग करती है। लौकिक प्रेम में तृप्ति अभीष्ट होती है जो अपनत्व की सीमा में ही प्राप्त है। इन 'आपनपौ' से ऊपर उठने पर ही यह संभव हो पाता है कि प्रिय को न प्राप्त करने वाला प्रेमी स्वयं असह दुख सहता हुआ भी प्रिय के कल्याण की ही कामना करता रहता है ।

जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ, होति रही है सदा चित चीती ॥

हैं हम ही चुर की दुखहाई विरंचि विचारि कै जाति रची ती ॥

सूर की गोपियों में यही विशेषता है। वे कहती हैं :

जहं जहं जाहु राज करौ तहं तहं लेहु कोटि सिर भार । /

सूरदास हम देति असीसहि न्हात खसै जनि बार ॥—सूरसागर

घनानन्द प्रेम के क्षेत्र में सांसारिक चातुर्य को बाधास्वरूप मानते हैं :

जान घनानन्द अनोखो यह प्रेम पंथ/भूले ते चलत, रहैं सुधि

कै थकित हौ ।

जो आत्मविस्मृत हैं वे चलते रहते हैं, जिन्हें अपनी (अपने स्वार्थ की हानि-लाभ की) सुधि है, वे इस मार्ग पर थक कर बैठ जाते हैं।

एक छप्पय में घनानन्द उन लोगों के पास स्वप्न में भी क्षण भर भी बैठते

का निषेध करते हैं जो प्रेम और नियम का तथा अनुराग और चतुरता का अंतर नहीं कर पाते :

मही दूध सम गनै, हंस-बक भेद न जानै । / कोकिल काक न ज्ञान,
कांच-मणि एक प्रमानै । / चंदन-ढाक समान, रांग-रूपौ सम
तोलै । / बिन विवेक गुन-दोष, मूढ़ कवि व्यौरि न बौलै । /
प्रेम-नेम हित चतुराई, जे न विचारत नेकु मन । / सपने हू न
बिलवियै, छिन तिन ढिंग आनन्दधन ॥

चंदन और ढाक में, कांच और मणि में तथा कोयल और कौवे में जो अंतर है वही प्रेम और नियम (सांसारिक नियम) में तथा हेत (अनुराग) और चतुराई में है। प्रेम मार्ग के पथिक को सांसारिक नियम-कानून और चतुराई से कुछ लेना-देना नहीं।

किसी का भी सर्वस्व समर्पण पाने में सहज ही समर्थ वह प्रिय एकांत प्रेमी की विकलता को नहीं जान सकता। उसकी एक शर्त है कि अगर वह पल मात्र के लिए अपने को आप से अलग कर सके तो उसे पता चले कि उसके वियोग में जो तड़प रहे हैं, उनकी वास्तविक स्थिति क्या है :

मो गति बूझ परे तब ही जब होहु घरीक हू आपतें न्यारे ॥

उस दशा का कथन असंभव है। दिन-रात का अंतर पड़ जायगा, अगर उसका वर्णन किया जाय। इसीलिए घनानन्द की काव्यप्रिया (वाणी-वधु) का साहचर्य सभी लोग नहीं पा सकते। उसके लिए विशेष रिखवार सुजान होना चाहिए।

घनआनन्द बूझनि अंक बसै बिलसै रिखवार सुजान-घनी ।

क्योंकि वह हृदय रूपी भवन में मौन का धूंधट डालकर बैठी है :

उर भौन में मौन को धूंधट कै दुरि बैठी विराजति बात बनी ।

मौन के धूंधट को हटा पाना सबके वश की बात तो नहीं है। इसीलिए ब्रजनाथ की चेतावनी है कि :

समुझै कविता घनआनन्द की जिन आंखि नेह की पीर तकी ।

घनानन्द ने अपने जीवन और अपनी मृत्यु दोनों में इस प्रेम पीर का निर्वाह किया।

मृत्यु की घटना पर दृष्टिपात करने से घनानन्द की प्रेम परिकल्पना साकार हो उठती है। उनकी मृत्यु, कहते हैं, ग्रहमदशाह अबदाली के सैनिकों के हाथों हुई। मथुरा में कलेआम करने वालों से घनानन्द ने कहा कि मेरे शरीर पर तलवार से धीरे-धीरे धाव करते हुए मुझे मारो। ज्यों-ज्यों इनको तलवार के धाव लगते गए त्यों-त्यों ये ब्रज-रज में लौटते रहे। ब्रज-रज के कण-कण में अपने रक्त की एक-एक बूँद मिलाकर उन्होंने प्रेम की पीड़ा का रस लेते हुए

शरीर त्याग किया ।¹

प्रिय सुजान से लौकिक प्रेम करते हुए चरम प्रगाढ़ता के साथ तृप्ति का अनुभव करने वाले प्रेमी ने उसके विरह को भी उसी आत्मीयता के साथ भोगा । अंत में लौकिक प्रेमानुभव कृष्णोन्मुख हुआ और कृष्ण की लीला भूमि ब्रज के रजकर्णों को अपने रक्त से सोखते हुए, तड़प का स्वाद लेते हुए मर कर घनानन्द ने अपने प्रेम को उस रूप में प्रमाणित किया जैसा और कोई न कर सका ।

1. घनानन्द कविता, प्रस्तावना, पृ० 18.

घनानन्द की भक्ति

लौकिक दृष्टि से अत्यंत ऐंद्रिय प्रेम-भाव से ईश्वरीय प्रेम तक पहुँचने की जो साधना घनानन्द ने अपने जीवन में की वह उनके काव्य में प्रतिफलित है। इस दृष्टि से उनका काव्य उनके जीवनानुभव से अभिन्न है। रीतिकाल के अन्य कवियों की तरह शृंगार और भक्ति की खिचड़ी पकाने के स्थान पर घनानन्द ने अपना प्रेमजीवन और भक्तिजीवन अलग-अलग रखकर दोनों को पूर्णता तक पहुँचाया। इसी प्रकार प्रेम और भक्ति संबंधी उनकी रचनाओं के संसार भी अलग-अलग हैं। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि अपने शृंगार-भाव को घनानन्द किसी हीनता भाव या पाप बोध के साथ नहीं जोड़ते। वे प्रकृत मनुष्य के स्तर पर उत्पन्न नैसर्गिक प्रेम को भी ईश्वरीय अलौकिक और दिव्य प्रेम का ही ग्रंथ मानते हैं। अंतर केवल मात्रा भेद का है। उनका स्पष्ट दावा है कि :

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, विचार/बापुरो हहरि वार
हीते फिर आयो है।/ताहो एकरस है बिवस अवगाहैं दोऊ
नेही हरि राधा, जिन्है देखे सरसायो है।/ताकी कोऊ तरल
तरंग संग छूट्यौ कन/पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ
है।/सोई घनआनन्द सुजान लागि हेत होत/ऐसे मथि मन पै
सरूप ठहरायौ है।

राधा और कृष्ण जिस प्रेम-पर्योगि में निरंतर अवगाहन करते हैं, वह इस जगत में नहीं है। उसको जानने का कोई सबाल पैदा नहीं होता क्योंकि ज्ञान (विचार) उसके तट से ही लौट आता है। अतः उस दिव्य प्रेम का अनुभव करने का एक मात्र उपाय यह है कि उस सागर की एक बूँद का जो समस्त लोकलोकांतर में फैल कर उफन रही है, आस्वादन किया जाय। स्त्री और पुरुष के प्रेम में यदि लंपट्टा नहीं है, एकनिष्ठता और सचाई है तो वह उसी दिव्य प्रेम का अनुभव सोपान बन जाएगा। यही स्थापना है घनानन्द की, और अपने जीवन

में इसी की साधना उन्होंने की। मृत्यु के क्षणों में भी वे उसका स्वाद लेते रहे। घनानन्द की यह प्रेम साधना अपनी गंभीरता में इश्कमजाजी से इश्कहकीकी तक पहुँचने वाले सूफी प्रेम की अपेक्षा अधिक उदात्त बन गई है। रहस्यवाद की रुढ़ि को छोड़ देना भी इसका एक बड़ा कारण है। सुजान के साथ प्रेम को संपूर्णता के साथ भोगने वाला प्रेमी जब परिस्थितिवश अकेले रहने को विवश हो गया तो उसने वृन्दावन की शरण ली जहां उसका संबंध उस प्रेम-प्रयोग से जुड़ा जो राधा और कृष्ण के बीच शाश्वत रूप में लहराता रहता है।

घनानन्द निवार्क संप्रदाय में दीक्षित हो गए। श्री वृन्दावनदेव इनके गुरु थे। सांप्रदायिक भक्ति की दृष्टि से घनानन्द ने कितना महत्व अर्जित किया इसका प्रमाण इनका सख्यभाव का सांप्रदायिक नामकरण है जो सबको सुलभ नहीं होता : 'सख्य भाव की उपासना करने वाले महात्माओं के, जो साधना के अनेक सोपान पार कर इस भाव में लीन हो जाते हैं, सांप्रदायिक नाम भी उनके सिद्ध गुरुओं द्वारा रख दिए जाते हैं। निवार्क संप्रदाय की गही पर आसीन होने वाले सभी आचार्यों के सांप्रदायिक नाम थे और वे अपने अंतरंग परिसर में उसी नाम से अभिहित होते रहे हैं। ऐसे नाम साधना की कंची भूमिका में पहुँचने पर ही प्राप्त होते हैं। 'नागर समुच्चय' में जो वृत्त 'आनन्दघन' के संबंध में राजकवि जयलाल ने दिया है उससे 'आनन्दघन' महात्मा कोटि में माने जाते थे, यह स्पष्ट है। प्रेमसाधना का अत्यधिक पथ पार कर ये बड़े-बड़े साधकों, सिद्धों को पीछे छोड़ 'सुजानों' की कोटि में पहुँच गए थे। अतः संप्रदाय में इनका सखीभाव का नामकरण हो गया था।'

'वृषभानुपुर सुषमा वर्णन' ² में घनानन्द का कथन है :

नीको नांव बहुगुनी मेरो। बरसाने ही सुन्दर खेरो ॥

यह नामकरण स्वर्य श्री राधाजी का किया हुआ है :

राधा नांव बहुगुनी राख्यौ। सोई अरथ हिए अभिलाख्यौ ॥

'मनोरथ मंजरी' में तो सखी 'बहुगुनी' पर भी कृष्ण की कृपा होने और उसके कारण अपने लज्जित हो जाने का उल्लेख किया गया।³

मोहि भुज भरै छकानि सों जिय समझि लजाऊ। /इस प्रकार के

भाव 'प्रिया प्रसाद' में भैङ्गवर्णित हुए हैं।⁴

सांप्रदायिक भक्ति की दृष्टि से घनानन्द का महत्व इस प्रकार दैसा सिद्ध होता है जैसा जीवन-भर उसी की साधना करने वाले आचार्यों को भी सुलभ नहीं हुआ।

सांप्रदायिक भक्ति के क्षेत्र में घनानन्द का महत्व इस बात का प्रमाण है

1. हिंदी साहित्य का अतीत, भाग-2, श्रृंगारकाल, पृ० 729, 2. वही, पृ० 730

3. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 289. 4. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 288.

कि जब वे ईश्वरीय प्रेम की ओर उन्मुख हुए तो वहां भी उन्हें वैसी ही अद्भुत सिद्धि मिली जैसी उससे पूर्व श्रृंगार साधना के क्षेत्र में मिल चुकी थी।

वहां एक बात का स्पष्टीकरण आवश्यक है। घनानन्द के जिस सांप्रदायिक भक्त रूप और उसके असाधारण महत्व की चर्चा ऊपर हो चुकी है, उसका पता उनकी जिन रचनाओं से मिलता है, वे रचनाएँ भक्ति की दृष्टि से चाहे जितनी महत्व की हों, काव्यात्मकता की दृष्टि से वे घनानन्द की ऊंचाई की छाया भी नहीं छु सकी हैं। तब लो यह कहना पड़ेगा कि जिस प्रकार लौकिक प्रेम भावना के समान ही श्रेष्ठ कवित्व उनके प्रेम वर्णन संबंधी छंदों में है अर्थात् उनके प्रेम काव्य और प्रेम जीवन में जैसा अभेद है, वैसा भक्ति के क्षेत्र में नहीं है। भक्ति भावना जितनी महत है, उसको अभिव्यक्त करने वाला काव्य उतना ही कमजोर है। इस बात से इनकार करना संभव नहीं होगा अगर घनानन्द की भक्ति संबंधी रचनाओं को सांप्रदायिक ग्रंथों¹ तक ही सीमित मान लिया जाय। वस्तुस्थिति यह है कि घनानन्द का हिन्दी काव्य के इतिहास में जो छोड़ स्थान बना है उसमें इन पुस्तकों का योगदान शून्य के बराबर है। घनानन्द का भक्त स्वरूप इन ग्रंथों के कारण प्रतिष्ठित हुआ है, वह भी सांप्रदायिक भक्त रूप।² साहित्य के भावक को संप्रदाय और उसके नाम रूप से बहुत कुछ लेना-देना नहीं होता। घनानन्द का नाम लेने पर शायद ही साहित्य के किसी विद्यार्थी के मन में उनका सांप्रदायिक रूप आता है। भक्ति के गाढ़ भाव में आकंठ डूब जाने के बाद प्रेम में आकंठ डूबे घनानन्द ने न केवल अपने प्रेम की धारा को पूर्णतः ऊर्ध्वमुखी कर लिया, बल्कि काव्यात्मक वक्ता तक को छोड़ दिया। इससे काव्यात्मकता की हानि हुई, किन्तु अब उनको काव्यात्मक उपलब्धि की चिता नहीं रह गई थी। यह स्वीकारोक्ति उनके एक पद में स्पष्ट हुई है :

रसना गुपाल के गुन उरझी । / बहुत भांति छल छंद बंद बकवाद
फंद में सुरंभी³ ।

ऐसी दशा में उनके प्रेम व्यंजक छंदों के साथ ही जो फुटकर भक्ति संबंधी छंद हैं केवल उन्हीं के आधार पर घनानन्द के उस भक्त रूप की भलक मिलती है जो सामान्य शब्दालु और साहित्य-रसिक को भावविभोर करने की क्षमता रखता है। इसीलिए यहां उन सांप्रदायिक ग्रंथों को छोड़कर घनानन्द के फुटकर छंदों के आधार पर ही उनके भक्तरूप और उनकी भक्ति भावना का अध्ययन,

1. घनानन्द के इस प्रकार के ग्रंथों में— व्रजप्रसाद, व्रजस्वरूप, व्रजविलास, धाम चमत्कार, व्रजव्यवहार, पदावली, वृषभानुपुर सुषमा वर्णन, प्रिया प्रसाद, मनोरथ मंजरी आदि का उल्लेख किया जाता है। 2. घनानन्द की संपूर्ण रचनाओं के आधार पर उनके भक्ति भाव का विवेचन द्वारा मनोहरलाल गोड़े ने अपने शोध ग्रंथ के आठवें परिच्छेद में विशद रूप में किया है। 3. घनानन्द और स्वचंद काव्यधारा, पृ० 153 पर उद्धृत।

साहित्य की दृष्टि से किया जा सकता है।

कृष्ण की अपूर्व माधुरी, उनकी क्रीड़ाप्रिय कुतूहलवृत्ति और उनके प्रबल आकर्षण के प्रति घनानन्द के छंदों में वैसा ही अपूर्व अनुराग फलकता है, जैसा रसवानि में :

छवि सों छबीलो छैल आजु भोर याही गैल/अति ही रंगीली
भाँति औचक ही आय गौ।/चटक-मटक-भरी लटकि लचनि
नीकी/मृदु मुसक्यानि देखें मो मन बिकाय गौ।/प्रेम सों लपेटी
कोऊ निपट अनूठी तान/मोतन चिताय गाय लोचन दुराय गौ।
तबतै रही हौं धूमि झूमि जकि बावरी हैं/मुर की तरंगनि में
रंग वरसाय गौ॥

ऐसे रूप को, ऐसी आदाओं को देखने से दर्शक की उत्कंठा बढ़ती चली जाती है :

छवि की निकाई एहो मोहन कन्हाई, कछू/बरनी न जाई जो
लुनाई दरसति है।/बारिधि तरंग जैसे धुनि-राग-रंग जैसे/
प्रतिछिन अधिक उमंग सरसति है।/ किधों इन नैननि सराहौं
प्रान प्यारे रूप / रेलहिं सके लै तज दीठि तरसति है।/ज्यों-ज्यों
उत आनन पै आनंद से ओप औरे/त्यों-त्यों इत चाहनि में चाह

* बरसति है॥

रूप का रेला कृष्ण की छवि से चला आ रहा है जिसे आश्रय (भक्त) के नेत्र संग्रह करते हैं, तब भी उनमें दर्शन की प्यास बढ़ी ही रहती है। बिहारी का यह दोहा इस पंक्ति से तुलनीय है :

त्यों-त्यों प्यासोई रहत ज्यों-ज्यों पियत अधाय।/सुगन सलोने
रूप की जु न चख-तृषा बुझाय॥

नमकीन पानी पीने से प्यास के बढ़ने का चमत्कार और है तथा बाढ़ को फेलते हुए व्यक्ति का प्यासा रह जाना और बात है। वह घनानन्द के लिए ही संभव है। कृष्ण की एक-एक मुद्रा मन में बस जाती है, कभी भुलाई नहीं जाती :

काल्हि इहि गली अली निकस्तो श्रचानक है/कहा कहों ग्रटक
भटक तिहि काल की।/भिजई हों रोम-रोम श्रानंद के घन छाय/
बसी मेरी आंखिन में आवनि गुपाल की॥

प्रेम और भक्ति के सर्वश्रेष्ठ आलंबन श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति की तीव्रता और उसके कारण की भलक घनानन्द के उपर्युक्त छंदों में मिल जाती है। काव्यात्मकता की दृष्टि से ये छंद मूर्त्तिविद्वान करने में आश्चर्यजनक रूप से सफल हैं।

कृष्ण के प्रति अपने हृदय में अगाध प्रेम भाव का अनुभव करने वाला भक्त, उनकी कृष्ण दृष्टि की याचना करेगा ही। इसके लिए पहले उसके मन में उनकी

कृपा के प्रति दृढ़निष्ठा और अपनी अनन्यता के प्रति अदिग विश्वास होना चाहिए। वस्तुतः यही अनन्यता और निष्ठा भक्ति के आधारभूत तत्त्व हैं। कृष्ण की कृपा के प्रति घनानन्द की भावना उनके भक्त हृदय का रहस्य खोलती है :

बोहित विसास हू चड़ाय लैहै सोई हाहा/कृस्न-कृपासिधु मेरे मन
अवगाहि तू ॥

अपने नेत्रों को बाह्य रूप में हरि-दर्शन के लिए भटकने से वर्जित करके भक्त कहता है कि पलकों को बंद करके उस स्वरूप को क्यों नहीं देखता :

नैननि संग फिरे भटक्यी पल मूँदि सरूप निहारत क्यों नहीं ।/
स्याम-मुजान-कृपा-घनआनन्द प्रान पपीहन पारत क्यों नहीं ॥

जिसे भगवान की कृपा का भरोसा हो गया वह और किसी की ओर क्यों देखे :

परे रहौ करम, धरम सब धरे रहौ/डरे रहौ डर, कौन गनै हानि
लाहे कों ।/लोक परलोक जौ कछू हैं तौ न छूहैं हम/छीलर रुचै
न छीरसिन्धु अवगाहे कों ।/महाघनआनन्द धुमड़ पाइयत जहां/
सोच सुखा परी कर्म-दंख दाहे कों ।/ऐसी रस-रासि लहि
उल्हाँ रहत सदा/कृपा-दिखवैया काहू दिसि देखे काहे कों ।

कृपा की ओर देखने वाले के मन में ऐसी रस-राशि उमड़ती रहती है कि उसे किसी दूसरी ओर देखने का अवकाश ही कहां है ? उस कृपा के लिए किसी प्रयत्न या पात्रता की भी आवश्यकता नहीं है। वह सर्वत्र छा रही है। वह तुम्हें भी सभी दुखताप से बचा लेगी :

काहे कों साचि भरै जियरा परीतोहि कहा विवि वातनि की है ।/
हैं घनआनन्द स्याम सुजान सम्भारि तू चातिक ज्यों, सुखी जी
है ।/ऐसे रसामृत-पुंजर्हि पाय कै को सठ, साघन-छीलर छी है ।/
जाकी कृपा नित छाय रही दुख-ताप तें बौरे बचाय ही ली है ।

कृपा करने वाला कृपा न करे, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि उस ईश्वर की ओर बातों में शिथिलता हो सकती है, उनकी कृपा तो स्वयं अत्यंत आतुर रहती है। वह तो (भक्त को) मिल ही जाएगी :

हरिहर को जेतिक सुभाव हम हेरि लहे/दानी बड़े पै न मांगे बिन
बढ़ै दातुरी ।/दीनता न आयै तौ लौं बन्धु करि कौन पावै/सांच
सों निकट दूरि भाजै देखि चातुरी ।/गुननि बधे हैं निरगुन हू
अनंदघन,/मति बीर यहै गति चाहें धीर जातु री ।/आतुर न
हूँ री अति चातुर विचार थकि, और सब ढीले कृपा ही के
अति आतुरी ॥

भगवान दानी बहुत बड़े हैं, पर बिना मांगे दान की इच्छा नहीं बढ़ती, वे दीन-

बन्धु हैं अतः उनकी बंधुता दीन हुए बिना नहीं मिलेगी । वे सच्चे के निकट हैं, अतः चतुरता देखकर दूर भागते हैं । उनकी अन्य विशेषताओं में ढीलापन हो सकता है, कृपा तो सदैव आतुर रहती है (क्योंकि द्रवणशीलता उसका स्वभाव है, जैसे पानी का) ।

भगवान की अहैतुकी और अपरिसीम कृपा के संबंध में प्रायः सभी देशों और धर्मों के साधक भक्त एकमत हैं । मनुष्य अपनी छुद्रता के कारण उस सीमाहीन करुणा के प्रसार को धारण करने में समर्थ न हो, यह चिंता भक्तों ने की है । घनानन्द अपने व्यक्तित्व की लघुता और उस कृपा के प्रवाह को लेकर निश्चित हैं । वे कहते हैं कि मेरा हृदय संकुचित है और वह कृपा अपरिसीम है, यह बात ठीक है किन्तु इसके कारण मेरे हृदय में उस धारा के प्रवाहित होने में कोई बाधा नहीं आ सकती । जिस प्रकार नदी की धारा उसके कूलों का विस्तार करती हुई बहती है उसी प्रकार वह करुणा मेरे संकुचित हृदय का विस्तार करके ही प्रवाहित होगी :

चातिक-चित्तकृपा-घनश्रानन्द चोंच की खोंच सु क्यों करि
धारों ।/त्याँ रत्नाकर दान समैं बुधि-जीरन-चीर कहां लौं
पसारौं/वै गुन ताके अनेक लखों निहचै उर आनि कै एक
बिचारौं ।/कूल बढ़ाय प्रवाह बढ़ै यौं कृपा-बल पाय कृपाहि
सराहौं ।

इस छंद में भगवत्कृपा के प्रति जो अगाध विश्वास है वह चमत्कार मात्र नहीं है, जैसा विहारी के इस दोहे में है :

करौं कुबत जग कुटिलता तजौं न दीनदयाल /दुखी होहुगे सरल
हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥

यहां त्रिभंगी लाल (तीन जगह से टेढ़े) कृष्ण को धारण करने के लिए भक्त सांसारिक कुटिलता को धारण करना अनिवार्य मानता है, जबकि घनानन्द का भाव विह्वल अंतःकरण इस दृढ़ विश्वास से आपूरित है कि वह प्रवाह संकरे कूल को भी स्फीत कर लेगा । यहाँ विहारी की तरह केवल चमत्कार अभीष्ट नहीं है ।

ईश्वर की कृपा के दान के समय मनुष्य बुद्धि का जीर्ण वस्त्र कहां तक कैलाएगा ? ईश्वर से हम क्या मांगें, यह बात हमारी जीर्णबुद्धि कैसे निश्चित करेगी ? इसलिए उस असीम कृपा करने वाले पर ही यह छोड़ देना भी बुद्धि-मानी है कि वह कृपा हमें किस रूप में प्राप्त हो । भक्त को उस कृपा की असीमता पर विश्वास है इसलिए वह अपनी तुच्छता और अपात्रता की भी चिंता नहीं करता । उसे अखंड विश्वास है कि वह कृपालूपी नदी पहले मेरे चित्तरूपी कूलों का विस्तार कर लेगी तब स्वयं उफनेगी । मैं जो उस कृपा की असीमता की

सराहना कर रहा हूँ, वह भी उसी कृपा के बल पर। ध्वनि यह कि वह कृपा मुझ पर इस रूप में हुई है कि मैं उसका महत्व समझने लायक हो गया हूँ, अन्यथा मैं तो इतना तुच्छ था कि उस महा प्रवाह की एक बूँद भी न घारण कर सकूँ।

घनानन्द उसी वाणी को सार्थक मानते हैं जो श्याम के हृदय-कमल का कृपारूपी मकरंद प्राप्त करने वाले मधुव्रत (भ्रमर) की वाणी हो :

बानी सरसानी ता मधुव्रत की, लहौ जिन, कृपा मकरंद स्याम-
हृदय-सरोज को।

घनानन्द का विश्वास है कि उन्हीं कवि, भक्तों और गायकों की वाणी सफल हो सकी जिन्होंने कृष्ण के हृदयरूपी कमल (के खिलने पर प्रसन्न होने पर) में प्रस्फुटित कृपारूपी मकरंद को प्राप्त कर लिया। स्मरणीय है कि घनानन्द लौकिक और अलौकिक प्रेम में अंतर नहीं मानते और संपूर्ण 'प्रेम तत्व' की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि जिस प्रेम के सागर में राधा-कृष्ण रात-दिन अवगाहन करते हैं उसकी एक बूँद ही संपूर्ण लोकों को (प्रेम-रस से) उफनाए हुए हैं और वही प्रेम सुजान और घनानन्द के लिए हेत (सांसारिक लगाव) हो गया है। वह चाहे जितना ऐंद्रिय क्यों न दिखाई पड़ता हो।

घनानन्द ने अपने मनप्राणों के साथ अपनी वाणी को भी सार्थक और सख्त बनाया उसी कृपा को पाकर।

बिना किसी पहली पहचान के वह कृपा भक्त को सुलभ हो गई है, जिसके द्वारा पहचाना जाकर और जिसको पहचान कर अब और किसी चीज को पहचानने और चाहने की आवश्यकता नहीं रह गई :

अब पहचानि हमें चाहिए न काहू संग, / बिन पहचानि कृपा-लीनें
पहिचानि हैं।

यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जिस प्रकार तुलसीदास ने राम से पृथक व्यक्तित्व 'नाम' को दिया और उसके प्रभाव को राम के प्रभाव से अधिक बताया—'राम न सकर्हि नाम गुन गाइ।' उसी प्रकार घनानन्द ने कृष्ण से पृथक व्यक्तित्व उनकी 'कृपा' को दिया है। कृष्ण की स्वभावगत विशेषताओं (दानशिरोमणित्व, दीनबंधुता आदि) में आलस्य हो सकता है किन्तु 'कृपा' सदैव 'आतुर' रहती है।

तुलसी के समान ही घनानन्द ने भी धर्म, कर्म आदि अन्य साधनों की व्यर्थता का उद्घोष पूर्ण निश्चय के साथ किया है। कर्म के ढाक-वनों के जलने की ही नहीं, उससे भी तीखी बात वे कर्मकांड के लिए कहते हैं :

‘कोऊ कृपा बल दूबरो हौं करि क्यों नहि साधन के सब साधों।

ता बिन ते स्व-सूल सहै भ्रम-भूल लहैं सुन एक न आधों॥

कोई कृपा का बल न पाने के कारण दुर्बल है तो वह अन्य साधनों की शव-

साधना करता रह जाय, विना उस (कृपा) के वह एक क्या आदी भी (सफलता) नहीं पा सकता ।

तुलसीदास ने बार-बार मनुष्य की सीमाओं का ध्यान करके सचेत किया है :

यह कलिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरो सो । /तप,
तीरथ, उपवास, दान, मख, जेहि जो रुचै करो सो । /पायेहि ऐ
जानिबो करमफल भरि-भरि बेद परो सो ।

तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरिफिरि पचि मरै मरो सो ।/
राम-नाम बोहित भव-सागर चाहै तरन तरो सो ॥

भगवत्कृपा के प्रति अनन्यता इसी विश्वास के कारण आती है कि अन्य कोई उपाय संभव नहीं है । धनानन्द के मन को, गोस्वामी तुलसीदास की भाँति यह पूर्ण विश्वास है कि उस 'कृपा' के विना सब कुछ व्यर्थ है : दूसरी ओर सहज ही उपलब्ध उस कृपा का स्वाद पा लेने पर सारे स्वाद फीके पड़ जाते हैं । धनानन्द के लिए अब सारे स्वाद फीके पड़ गए हैं, उन्हें कृपा का स्वाद मिल गया है : 'फीके सवाद परे सब ही अब, ऐसो कछू रस पान कृपा को ।'

मौन की महत्ता

भाषा समान अनुभवों वाले मानव समुदाय के बीच अकथित और अलिखित रूप में विकसित एक समझौता है। किसी वस्तु या भाव के प्रति अपने अनुभव को जब हम दूसरों तक पहुँचाना चाहते हैं तो भाषा के माध्यम से पहुँचाते हैं अर्थात् उसके अनुभव जिन प्रतीकों के साथ जुड़े हुए हैं, हम उनके द्वारा उन्हें स्मरण करा देते हैं। गुलाब की पहचान को व्यक्त करने के लिए शब्दों का प्रयोग करके गुलाब के संबंध में दूसरे व्यक्ति के अनुभव का स्मरण मात्र हम करा सकते हैं। शब्दों के ये कामचलाऊ प्रतीक हमारी सहायता वहां नहीं करते जहां हमारे समझौते वाले समुदाय से बाहर का आदमी (इतर भाषा-भाषी) होता है। स्पष्ट ही इस प्रकार का समझौता परिचित अनुभव जगत के भीतर ही काम देता है। अगर किसी आदमी को कोई ऐसा अनुभव होता है जो सामान्य जगत के अनुभवों से भिन्न है तो वह उसको व्यक्त करने के लिए शब्द न पाकर नेति-नेति कहने लगता है या मौन की 'भाषा' का प्रयोग करता है। भाषा की संकुचित सीमाओं और अनुभव जगत की ग्रसीम सत्ता को जानने वाले महाकवि शब्दातीत (या भाषातीत) अनुभवों को भी अपने कौशल से संप्रेषित कर देते हैं। आधुनिक हिंदी कविता में निराला ने 'मौन के मधु' का आस्वादन कराया है :

मौन मधु हो जाय, / भाषा मूकता की आड़ में, / मन सरलता की

बाढ़ में, / जल बिदु-सा बह जाय ।

निराला के बाद मौन की महत्ता 'अज्ञेय' के काव्य में प्रकट हुई है।

मध्यकालीन कवियों में मौन की पहचान घनानन्द को सबसे अधिक है। इसका कारण उनकी विवशता में निहित है। वे जो कुछ अनुभव करते हैं, पीड़ा की जिस गहराई को व्यक्त करना चाहते हैं, वह सामान्य अनुभव जगत की वस्तु नहीं है, इसलिए समझौते में (भाषा में) उसके लिए प्रतीक (शब्द) नहीं बन सके हैं। इसलिए उसका प्रकाशन मौन द्वारा ही संभव है और उसी मौन की

और संकेत करके वे बार-बार उस शब्दातीत भाव-गांभीर्य का परिचय देना चाहते हैं।

मौन का महत्व काव्यानुभूति के संदर्भ में धनानन्द के लिए कितना है, यह उनके इस कथन से स्पष्ट है :

उर-मौन में मौन को घूंघट कै दुरि बैठी बिराजत बात बनी ।

बात (कथ्य-वर्ण अर्थात् काव्यानुभूति) रूपी वधू हृदय रूपी भवन में मौन का घूंघट डालकर बैठी हुई है। यह मौन का घूंघट इसलिए कि वह अनुभूति शब्दातीत है, शब्दों की सीमा उससे बहुत पहले ही समाप्त हो जाती है। इसीलिए :

जो दुख देखति हैं धनआनन्द रैनि-दिना बिन जान सुतंतर ।

जानै वैई दिन राति, बखाने तें जाय परै दिन राति को
अन्तर ॥

विरही की व्यथा (बात-अनुभूति) का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह अनुभूति शब्दातीत है। वर्णन करना ही पड़े तो शब्द उसका वास्तविक रूप उपस्थित न करके इतना भिन्न रूप उपस्थित करेंगे कि वास्तविक अनुभूति में और वर्णित बात में दिन-रात का (जमीन-आसमान का) अंतर हो जाएगा।

यही कारण है कि विरही अपनी व्यथा के लिए शब्दों वाली भाषा का प्रयोग नहीं करता, मौन की भाषा ही इसके पास है। इतना विश्वास अवश्य है कि जिसको वह अपनी पुकार सुनाना चाहता है उसको स्थूल कानों से ध्वनि मात्र सुनने से आगे बढ़कर मौन की भाषा को सुन लेने की दक्षता प्राप्त है। उसकी कृपा ऐसी नहीं है कि कानों से सुनी हुई पुकार पर द्रवित हो। उस प्रिय (या ईश्वर) की कृपा में ही कान हैं जो मौन की पुकार को सुन लेते हैं :

पहचाने हरि कौन मोसे अनपहचान को ।/त्यों पुकार मधि-मौन,

कृपा-कान मधि नैन ज्यों ।

कृपा रूपी कान नेत्रों में बसते हैं। वे मौन की पुकार को आँखों से ही सुन लेते हैं और कृपा करते रहते हैं। जैसे पुकार शब्दातीत है, वैसे ही इसका ग्रहण भी है।

विरही प्रिय की निठुराई और उनके द्वारा की गई आनाकानी को लक्ष्य कर दुख का अनुभव तो करता है किन्तु निराश नहीं होता, क्योंकि उसे अंततः विश्वास है कि मेरे मौन का हाहाकार उसके नकली बहरेपन को बेघ देगा। उसे विश्वास वाणी की (शब्दों की) शक्ति पर नहीं है, अपनी मौन पुकार पर है :

मौन हूँ सों देखिहौं, कितेक पन पालिहैं जूँ/कूक भरी मूकता
बुलाय आप बोलि है ।

प्रिय के वैशिष्ट्य का वर्णन भी शब्दातीत है इसलिए उसका बखान, प्रेमी के लिए मौन रह जाना ही है। यह मौन उसके अनिर्वच्य होने का प्रमाण है :

सुझत हौ, बूझत हौ, चाहत हौ, भाखत हौ, /रहत हौ, राखत हौ,
मौन हौ बखान जू ।

सृष्टिकर्ता की निर्दयता का निरूपण करने के लिए प्रेमी को इससे बड़ी विषमता उसकी दृष्टि में दूसरी नहीं मिलती कि एक और विधाता ने प्रिय के कानों में बहरेपन की रुई भर दी है, दूसरी और विरहियों की पुकार को ध्वनि रहित (मौन) बना दिया है :

छीन अति दीनन को सोहन अमोही रच्यो, /महा निरदई हृमें
मिल्यौ करतार है ।/तरें बहरापनि रुई है कान बीच हाय,/
विरही विचारन की मौन में पुकार है ॥३॥

प्रिय की सुधि में विरही जब सुध-बुध खो बैठता है तो उसके प्राणों की व्यथा मौन रुदन (मूक क्रंदन) में ही व्यक्त होती है :

अपनी पीड़ा तीव्रता को सुनने वाले तक पहुंचाने के लिए जिसे चीखना चाहिए, उसकी पुकार 'मौन' में है । दूसरी ओर विडम्बना यह है कि जो उस पुकार को सुनने वाला है, उसने अपने कानों में बहरा बनने के लिए रुई लगा ली है । काम्ब में रुई हो तो जोर की आवाज भी नहीं सुन पड़ती, फिर अगर कोई सुनने को तैयार भी न हो तब तो सुन पड़ने का सवाल ही नहीं उठता । लेकिन प्रेमी को मौन की शक्ति पर विश्वास है :

सुधि करें भूल की सुरति जब आप जाय, /तब सब सुधि भूलि
कूर्कौं गहि मौन कों ।

प्रेमी की व्यथा रसना के हृदय में एकरस होकर निवास करती है, वहां से बाहर नहीं आती है, इसीलिए वह कथा भी है तो मौन की ही :

तै मुंह लगाई तातें मोहि मौन ही की कथा, /रसना के उर एक-
रस रही बसि है ।

प्रिया की मान-दशा में उसका मौन, प्रेमी को उसके भीतर के प्रगाढ़ रस की कथा कहता है :

मनमा निबोई मन मानि रहो अरु मौन ही सों कछु बोलति है ।
उधर मौन की अर्गला लगाकर बात (व्यथा) हृदय के भीतर बैठी हुई है :

कागर-भौन लै आगर मौन दै बात बसी पै सुजानहि तेरे ।

व्यथा का प्रकाशन दो तरह से होता है । नेत्रों से आंसू के रूप में और मुँह से चीत्कार (क्रंदन) के रूप में । उस व्यथा की अभिव्यक्ति इन दोनों माध्यमों के बात की बात नहीं, अतः मौन एकमात्र सहायक है :

रोवनि आंसू न नैननि देखै रु मौन में व्याकुल प्रान पुकारें ।

मौन की यह पुकार विरह-व्यथित प्रेमी के हृदय की बात भी कहती है और ईश्वर की कृपा के लिए प्रार्थना भी करती है :

मौन हूं जाकी पुकार करै, गुनमान गहे जपे एक कृपा-जप ॥

मौन की भाषा का प्रयोग धनानन्द ने केवल विरोध का चमत्कार प्रदर्शित करने

के लिए नहीं किया है। विरोध का चमत्कार उनकी रुचि के अनुकूल है अवश्य, कितु मौन का सहारा उन्होंने भाषा की असमर्थता के कारण ही लिया है। सामान्य अनुभव को संप्रेषित करने वाली भाषा की पहुँच से बाहर की अनुभूति की अभिव्यक्ति घनानन्द मौन से करते हैं। कवि की असाधारण सफलता इसमें है कि मौन की गंभीरता की ओर ऐसे अर्थपूर्ण ढंग से संकेत करता है कि वह मौन ही मुखर हो उठता है और इतना कुछ कह जाता है, जितना अभिव्यक्ति के अन्य किसी माध्यम के द्वारा कहा जाना संभव नहीं है।

मौन की महत्ता का उद्घाटन करने में घनानन्द को असाधारण सफलता इसलिए मिली है कि उन्होंने वाणी की केवल सीमा ही नहीं देखी उसकी असीम शक्ति की भरपूर पहचान भी उनको है। वाणी की क्षमता बताते हुए वे कहते हैं कि जो अलेख (अलख-अलक्ष्य) है उसे भी वाणी की सहायता से देखा जा सकता है। प्रेमी की दशा भी अनिर्वचनीय ही है किंतु वाणी द्वारा उसका आभास दिया जा सकता है। नेत्रों और कानों के बीच में (देखने और सुनने की सीमा में न आ सकने वाले) मौन बखान को वाणी के द्वारा ही (काव्यवाणी से तात्पर्य) देखा और समझा जा सकता है :

आंखिन मूँदिबो बात दिखावत, सोवनि जागनि बात ही पेखिलै ।

बात सरूप अनूप अरूप है, भूल्यै कहा तू अलेखहि लेखि लै ॥

बाब की बात सुबात विचारिबो है छमता सब और विसेखि लै ।

नैननि-काननि बीच बसे घनआनन्द मौन बखान सुदेखि लै ॥

बात (कथ्य) आखों के मूंदे रहने पर और भी स्पष्ट रूप में दिखाई पड़े। जागते सोते कभी वह अदृश्य न हो, सदा मन के सामने प्रस्तुत रहे—ऐसे अनूप स्वरूप को वही देख सकता है जो अदृश्य को लक्ष्य करने (मौन की व्यंजना को समझने) की क्षमता वाला है। ऐसा साधक बात की बात में (सहज रूप में) बात (संप्रेष्य ध्वनि) को समझने की क्षमता रखता है और विशेष रूप से उसका निर्वचन भी करता है। वे लोग मौन को बखान की तरह स्पष्टरूप में कहीं गई बात की तरह देख पाते हैं। दूसरी ओर वाणी की महत्ता ही है जो मौन में छिपी व्यंजना को उजागर करती है। घनानन्द मानते हैं कि नेत्रों और कानों के बीच में जो बसा है अर्थात् इन दोनों इंद्रियों की पकड़ में न आ सकने वाला गंभीर भाव (जो केवल अनुभव में आ सकता है लेकिन अन्य स्थूल अनुभवों की तरह नहीं है) मौन के अतिरिक्त किसी अन्य माध्यम से व्यंजित नहीं हो सकता। लेकिन यहीं पर बात काव्य-माध्यम की भी उठती है। ऐसा मौन तो भोक्ता के पास ही रह जाएगा। फिर? सहृदय तक कैसे पहुँचेगा? वाणी का महत्व भी इसी बात में है कि वह अकथ को कह दे। अर्थात् जो काम वह नहीं कर सकती, वही काम उससे जो कवि ले सके—वही कवि सच्चे अर्थों में शब्द-साधक है। कवीर के संबंध में ग्राचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी वाणी की इसी सीमा और शक्ति की बात को रेखांकित करते हुए

कहते हैं : वे (कबीर) वाणी के डिक्टेटर थे । जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है । बन गया है तो सीधे-सीधे, नहीं तो दरेरा देकर । भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार-सी नजर आती है । उसमें मानो ऐसी हिम्मत ही नहीं है कि इस लापरवाह फक्कड़ की किसी फरमाइश को नाहीं कर सके । और अकह कहानी को रूप देकर मनोग्राही बना देने की तो जैसी ताकत कबीर की भाषा में है वैसी बहुत कम लेखकों में पाई जाती है । असीम अनंत ब्रह्मानंद में आत्मा का साक्षीभूत होकर मिलना कुछ वाणी के अगोचर, पकड़ में न आ सकने वाली ही बात है । पर 'बेहदी मैदान में रहा कबीरा' में न केवल उस गंभीर निगूढ़ तत्त्व को मूर्तिमान कर दिया गया है बल्कि अपनी फक्कड़ाना प्रकृति की मुहर भी मार दी गई है ।

घनानन्द और कबीर की भाषा में अंतर है तो यही कि कबीर उसके डिक्टेटर बन बैठे हैं तो घनानन्द ने उसकी इतनी गंभीर साधना की है कि वह उनके वश में हो गई है । वश में कुछ इस तरह हो गई है कि भाषा घनानन्द के लिए वह काम भी करती है जो उसकी शक्ति और सीमा से बाहर है । घनानन्द की वाणी (भाषा) कानों और आंखों की पकड़ से छूट जाने वाले मौन को शब्द के अपर्याप्त माध्यम से पूर्णरूप में प्रकाशित कर देती है । मौन को इस रूप में सजा देती है, ऐसा मूर्त कर देती है कि उसकी अभिव्यञ्जना शब्द से आगे तक पहुंच जाती है ।

घनानन्द ने अपने काव्य में वाणी की इस अद्भुत क्षमता को भी व्यावहारिक रूप में प्रमाणित कर दिया है ।

वाणी की सीमा से आगे बढ़कर मौन की महत्ता और उसको भी संप्रेषित कर सकने वाली वाणी की क्षमता, इन दोनों का अत्यंत कलात्मक निदर्शन घनानन्द के काव्य में है । मौन की शक्ति वाणी की सीमा का अतिक्रमण करती है और वाणी की शक्ति मौन की अकथनीयता को कथनीय बनाती है ।

घनानन्द के काव्य में अलंकार

काव्यानुभूति, मौन का मर्म और वाणी की शक्ति के संबंध में जिस प्रकार घनानन्द की अपनी निजी धारणा है उसी प्रकार अलंकरण के संबंध में भी है। जिस गहन गम्भीर मर्म पीड़ा का प्रकाशन घनानन्द के काव्य में हुआ है उसके साथ काव्य को अलंकृत करने वाली सतर्कता और चमत्कारवृत्ति का सहज ही कोई मेल नहीं बैठता, किंतु विचित्र बात है कि उनके काव्य में अलंकार भी सजावटी बाना छोड़ कर उसी अनुभूति का अंग बनकर प्रकट होता है।

विरोध का चमत्कार

घनानन्द का सर्वप्रिय अलंकार है विरोधाभास। विरोध का चमत्कार उत्पन्न करने के लिए उन्होंने केवल शब्दों का अभ्यास नहीं किया था, उनका संपूर्ण जीवन उस विषमता से भरा हुआ था जो काव्य में प्रवाहित हुई है। 'विरही विषम प्रेम की साधना में विषम परिस्थितियों का सामना करता है तो कवि भी विषम प्रेम की अभिव्यक्ति में विषम शब्द साधना करता है। घनानन्द की रचना की यह वैषम्यमूलकता या विरोध वृत्ति केवल शब्द साधना नहीं है। प्रेम की विषमता और इस विरोध वृत्ति में साम्य है'।¹ 'उक्तिवैषम्य उनकी प्रकृति से ही उत्पन्न बीज है बिना उनकी प्रकृति का अंग हुए विरोधाभास उनकी दीर्घ काल व्यापिनी काव्य साधना में आद्यन्त किस प्रकार आ सकता था? स्पष्ट ही उनके काव्य में विरोध ने जिस आलंकारिक सौदर्य की सृष्टि की है उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार, उनका जीवन है जो विषमता का कोष था। जीवन विषम परिस्थितियों और मनःस्थितियों का केंद्र हो गया था इसलिए अपने प्रेम को बिना बांकपन के, बिना स्थिति वैषम्य के निदर्शन के और कुछ नहीं तो बिना शब्द विरोध के वे व्यक्त ही नहीं कर पाते थे।'²

1. हिंदी साहित्य का अंतीम, भाग-2, शृंगारकाल, पृ० 701.
काव्यधारा, पृ० 392.

2. रीतिस्वच्छंद

विरोध के प्रति घनानन्द का आग्रह देखकर इस प्रकार का निष्कर्ष निकाल लेना कुछ बहुत अस्वाभाविक नहीं है किंतु उनके विरोध का सौंदर्य परखते हुए इस बात की ओर से सतकं रहने की अपेक्षा है कि केवल शब्द विरोध के रूप में (मात्र अलकार रूप में) उसको देख लेने की भूल न हो जाय। विरोध के चमत्कार से प्रकाशित कुछ भाव चित्रों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शब्द-चमत्कार उनका उद्देश्य नहीं है। प्रिय की सुधि इतनी सर्वभावग्रासिनी है कि उसमें प्रेमी के मन की सारी सुध-द्रुध को भुला देने की शक्ति है। प्रिय की सुधि आती है, प्रेमी (सब-कुछ से) बेसुध हो जाता है :

1. आनन्द निधान प्राण प्रीतम सुजान जू की ॥

सुधि सब भाँतिन सों बेसुधि करति है ।

विरही का चित्त उड़ा-उड़ा-सा रहता है। कहीं उसका मन नहीं लगता यद्यपि स्नेह के रस से पूर्ण रूप में वह हृदय भींगा हुआ है। (भींगी हुई चीज उड़ेगी नहीं विशेषतः कागज की पतंग, यहां वह एक पल स्थिर नहीं रहती) :

2. विरहसमीर की झकोरनि अधीर ने,

नीर भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ॥

आकाश में बादल बरसते हैं। विरही की आंखें उजड़ी हैं (सूनी आंखें) फिर भी निरंतर बरस रही हैं :

3. बद्रा बरसे रितु में घिरि कै नित ही अखियां उधरी बरसै ॥

आण लगने से कोई चीज जलती है। ज्यों-ज्यों आग तेज होती जाती है जलन बढ़ती जाती है। यहां विरही का शरीर विरह की आग में जितना ही जलता है उतना ही ठंडा (शक्तिरहित) पड़ता जाता है :

4. धूम कों न धरै, गात सीरो परै ज्यों-ज्यों जरै,

ढरै नैन नीर, बीर, हरै मति आह की ।

जलते हुए ठंडा पड़ने का विरोध केवल अलंकरण का विरोध नहीं है। जलने वाले पदार्थ को भस्म करने वाली आग जब उसे जलाती है तो उसका जो भाग जलकर भस्म हो जाता है, ठंडा पड़ता जाता है, ज्वाला आगे निकलती जाती है। प्रिय-विरह में प्रेमी ज्यों-ज्यों विरहमिन में जलता जाता है, उसकी शक्ति (ऊर्जा) ठंडी पड़ती जाती है। वियोगी क्रमशः शक्तिरहित हो रहा है। ऐसे ही इसकी उल्टी स्थिति भी है, ज्यों-ज्यों (सोच से) ठंडी पड़ती जाती है, त्यों-त्यों वियोगिनी (प्रिय की आश्चर्यजनक निठुराई के कारण) जलती जाती है :

5. आनन्द के घन हौं सजीवन सुजान देखौं,

सीरी परि सोचनि अचंभे सों जरों भरों ।

वियोगी की आंखों में सूनापन। 'आंखें उजड़ी हुई हैं' इस कथन से नैरंतर्य सूचित नहीं होता। आंखों में उजड़ने की स्थिति ही (स्थाई रूप में जैसे) बस गई है :

6. उजरनि बसी है, हमारी अंखियानि देखो

सूबस सुदेस जहां भावते बसत हैं।

वन में लगने वाली प्रचंड दावानि और किसी उपाय से तो नहीं बुझती, वर्षा की झड़ी से अवश्य ही बुझ जाती है। यहां वह सारा क्रम उलट गया है। विरह रुपी दावानि संपूर्ण तन-मन को जला रही है और उसी आग की सहायता से नेत्रों से भरने वाला अश्रु-प्रवाह (भर—झड़ी, वर्षा की) बढ़ता जा रहा है:

7. वारिद सहाय सों दवागिनि दबत देखो/विरह-दवागिनि तें नैना
भर कै रहे।

रात का भीगना, क्रमः प्रगाढ़ होती हुई रात के बढ़ने को जो अपलक निहारता है, वही देख रक्ता है। व्यथा के कारण जाग कर भीगती हुई रात के साथ-साथ प्रिय की निठुरता के निश्चय से वियोगी के प्राणों का सुखना बढ़ जाता है। इस स्थिति का चित्रण विरोध के बिना उस सूक्ष्मता के साथ संभव नहीं है जो उसके लिए अपेक्षित है:

8. बूँड़ि-बूँड़ि तरैं औधि-थाह, घनआनन्द यों/जीव सूक्यो ज्ञाय ज्यों-
ज्यों भीजत सरबरी।

किसी गंभीर चिता की स्थिति में, विशेषतः जब उस चिता का संबंध दीर्घ-काल से चली आती हुई प्रतीक्षा से हो, व्यक्ति बार-बार चेतना खो बैठता है, शारीरिक और मानसिक जड़ता के बे क्षण शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं और लगता है कि फिर वही निराशा सब और व्याप्त हो गई है। विरही की रातों के बीतने के क्रम में घनानन्द का यह कथन कि 'बूँड़ि-बूँड़ि तरैं औधि-थाह' उसी स्थिति का सूचक है। स्थूल उपमान यह कि जैसे अथाह समुद्र में बेसहारा पड़ा आदमी किसी अदृश्य जहाज की व्यर्थ होती हुई आशा में ऊमचूम होता रहे। डूब जाय, फिर ऊपर आ जाय। फिर डूब जाय, फिर ऊपर आ जाय। स्मरणीय है कि यह डूब-डूब कर किया गया समुद्र-संतरण सुंदर उक्ति के चमत्कार के लिए विलकुल नहीं आया है। 'अनबूँड़े बूँड़े तिरे जे बूँड़े सब अंग' का चमत्कार इस डूबने की तुलना में बहुत हल्का लगता है। विरोध का चमत्कार अगली पंक्ति में है: ज्यों-ज्यों रात भीगती जाती है, मेरे प्राण सुखते जाते हैं। किन्तु इस विरोध का संकेत भी चमत्कार से आगे गंभीर पीड़ा की अनुभूति तक पहुंचता है। भीगती हुई रात सब-कुछ को आद्र करती है किन्तु विरही के प्राणों को और अधिक सुखाती जाती है क्योंकि उसे रात के बीत रहे क्षणों में प्रभात की निराशा मूर्त होती हुई दिखाई पड़ती है।

केवल विरोध के चमत्कार पर डृष्टि रखने वाले के लिए इस प्रकार की अभिव्यक्ति कठिन है। गुणों को (रस्सी) पकड़कर बचना डूबने वाले के लिए संभव होता है, यहां प्रिय के गुणों को पकड़ने के कारण वियोग-सागर में डूबने की स्थिति का चित्र है:

उत्पन्न करता है वही 'डीली दशा' प्रेमी के (आश्रय) प्राणों को अपनी गिरफ्त में लेकर कसती जाती है। चमत्कार का संकेत यहाँ भी आलंबन की डीली दशा की पकड़ में छटपटाते हुए आकुल प्रेमी की हृदय-गति का सूचक है। उस रूप के प्रभाव में प्रेमी के रोम-रोम में काम जागता है, जो स्वभावतः और सभी स्वादों (इंद्रियबोध) को सुला देता है।

ऐसे रस-बस क्यों न सोवै और स्वाद कहाँ, /रोम-रोम जाग्योई
रहत मीनकेत है।

उपर्युक्त उदाहरणों में विरोध का चमत्कार अपने आप में तो काव्यात्मक है ही, उसका लक्ष्य हृदय के आवेग और आवेश को प्रकाशित करना है जिसे वह सहज ही कर लेता है।

विरोध का चमत्कार घनानन्द के लिए इतना सहज और अनिवार्य हो गया है कि इसके बिना घनानन्द के काव्य का अपना व्यक्तित्व ही नहीं बनता। 'विरोधाभास ही उनकी अलंकारिक सौदर्य चेतना का केंद्र बिन्दु हो गया है'।¹

'उनकी शैली में अनुभूति प्रेरित अलंकृति और भंगिमा आई है और वह परंपरागत काव्यालंकरण से कुछ भिन्न है।'

'अलंकारयोजना के लिए लाक्षणिक तथा मुहावरेदार प्रयोगों का व्यवहार कर कवि ने अपनी भाषा प्रवीणता का परिचय दिया है। इनमें न तो किलष्टता या अप्रतीतत्व आदि दोष हैं और न विरोध के केवल शब्दाश्रित होने से अता-त्विकता है। अर्थगत विरोध का प्रभाव चमत्कार नहीं है, गम्भीर अनुभूति है, लक्षणाश्रित तथा मुहावरों के विरोधों में बुद्धिक्लेश नहीं। परिचित शब्दों में ही विरोध का आभास होने से चमत्कार और अधिक हो गया है।'²

परंपरागत अलंकरण और परंपरागत प्रयोग से आगे बढ़कर प्रकट होने वाली इसी विशेषता को लक्ष्य करके आचार्य शुक्ल ने लिखा है : 'इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी।'³

असंगति

विरोधमूलक अलंकारों में असंगति रीतिकाल का प्रिय अलंकार रहा है। घनानन्द में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं :

1. बरसौं कित हू घनानन्द प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच नदी

1. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 392 2. घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा,
204. ३. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 322.

धनानन्द का शृंगार काव्य

तासी प्रिय रूपी आनंदधन बरसता है परदेश में और सोच रूपी नदी नी के पास (इत—यहां) बढ़ती है।

मान्य असंगति की अपेक्षा इसमें एक विशिष्ट धनि या अर्थचित्र यह भी दी जिस स्थान पर बढ़ती है उसी स्थान पर वृष्टि का होना अनिवार्य वृष्टि का प्रभाव नदी पर दूर तक पड़ता है। अपने स्वरूप में उपर्युक्त सुंदर असंगति है।

तैनन में लागे जाय, जागै सु करेजे बीच, /या बस है जीव धीर होत लोट-पोट है। /रोम-रोम पूरी पीर, व्याकुल सरीर महा, /धूमै मति गति आसें, प्यास की न टोट है।

कटाक्ष बाण प्रेमी के नेत्रों में लगते हैं, कलेजे में जाकर कसकते हैं ड़ा उठती है अन्यत्र, रोम-रोम में।

तो मुख लाल गुलाल हि लाय कै सौतिन के हिय होरी लगाई।

नायिका के कपोलों पर लाल गुलाल लगा दिया है जिससे (लाल गुलाल से) सौतों के हृदय में होली लग गई है।

लगे तारे खुलै, आँखें तारी त्याँ न पाँ, पिय, /नींद भरी जगै छन्हें अनोखियै रति है। /गुन बंधे कुल छूटै आपौ दै उदेग लूटै, /उत जुरै इत टूटै आनंद विपति है।

बंधती हैं दूसरी जगह (प्रिय के गुणों से), छूटती हैं (बंधनमुक्त होती हैं) से, जुटती हैं अन्यत्र और टूटती हैं और जगह।

असंगति बिहारी के प्रसिद्ध असंगति वाले दोहे से तुलनीय है :

दृग अरुभत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित्र प्रीति। /परति गांठ दुर्जन हिये, दई नई यह रीति।

भावना

1. आनंद के घन उघरे पै छल छाय लेत/कटुताई भरे रोम रोमहि अमीपगा।

परीत कारण से कार्य की सिद्धि के साथ ही प्रभाव की तीव्रता का संकेत।

2. विरहसमीर की झकोरन अधीर नेह-नीर-/भीज्यौ जीव तऊ गुड़ी लौ उड़्यौ रहै।

नेह-नीर में भीगे हुए हैं तब भी कागज की सूखी गुड़ी (पतंग) की तरह उड़ते हैं।

प्रतीप

परंपरागत उपमान को उलटकर प्रतीप होता है। घनानन्द ने आदर्श प्रेमी के दो प्रसिद्ध उपमानों की अक्षमता प्रमाणित की है :

1. हीन भएं जल मीन अधीन कहा कछू मो अकुलानि समानै ।
2. बिछुरे मिले मीन-पतंग-दसा कहां मो जिय की गति को परसै ।

उपर्युक्त पंक्तियों में अलंकार की दृष्टि से प्रतीप का सौंदर्य है अवश्य, किन्तु वियोगी की जिस स्थिति का अंकन है उसकी तीव्रता प्रतीप की सीमा का अतिक्रमण करके फूटती है।

एक स्थान पर बादलों की अपेक्षा आंखों में बरसने की क्षमता की अधिकता का वर्णन है। बादलों को बरसने के लिए विरना पड़ता है। आंखें बिना घिरे, उधड़ी ही बरसती हैं।

3. बदरा बरसै रितु में घिरि कै नित ही अंखियां उधरी बरसै ।

व्यतिरेक

उपमान की अपेक्षा उपमेय के उत्कर्ष का वर्णन और उपमेय की तुलना में उपमान के अपकर्ष का वर्णन व्यतिरेक में होता है। घनानन्द के प्रिय अलंकारों में यह भी है किन्तु भावना प्रवणता के आधार की पुष्टता के कारण कहीं प्रयास की भलक नहीं मिलती। प्रिया के मुख की सुधराई (सुधरापन—निखरी हुई उज्ज्वलता) के लिए 'नित प्रति पून्योई रहत आनन ओप उजास (बिहारी) जैसी बात न कहकर घनानन्द सहज भाव से चंद्र और सरोरुह की मलिनता का संकेत करते हुए आगे बढ़ जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप उक्ति की ताजगी बढ़ जाती है :

1. आनन की सुधराई कहाँ कहाँ जैसी बिराजति है जिंहि औसर।/
चंद तो मंद, मलीन सरोरुह, एक हूं रंग न दीजियै सो सर।
2. विरहिणी के तन मन से जैसी होली भची है, वैसी फागुन की
होली कहां ?
कहाँ एतो पानिप बिचारी पिचकारी घरै, /आंसू-नदी नैनि
उमणियै रहति है।/कहाँ ऐसी रांचनि हरदि केसू केसरि में,/
3. तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हूं सों, /लगी अलगी सी कछू
बरनी न जाति है।
4. देखें अनदेखें सही अटक्यो अनंदघन, /ऐसी गति कही कहा चुंबक
और लोह की।

जिस आश्रय को चुड़ैल लगती है तो वह विचित्र उन्माद की दशा में रहता है (विशेषतः स्त्रियों को ही चुड़ैल लगती है) यहाँ विरही का कथन है कि चुड़ैल तो जब लगती है, तब सताती है। तुम्हारी गति (तुम्हारे प्रति मेरे प्रबल आकर्षण का प्रभाव) तो चुड़ैल से सैकड़ों गुनी अधिक है कि लगने पर भी सताती है और न लगने पर भी। अर्थात् जब तुम पास नहीं होते हो तो भी अपनी गति से मुझे उन्मत्त करते हो और जब रहते हो तो भी। चुड़ैल जब लगना छोड़ देती है तो व्यक्ति स्वाभाविक दशा में लौट आता है। यहाँ यह स्थिति है कि लगना न लगना दोनों समान रूप से पीड़ादायक है।

चुंबक के सामने होने पर ही लोहा खिचता है, यहाँ अनुपस्थिति में भी वही दशा है।

5. खंजन ऐसे कहाँ मनरंजन, भीननि लेखाँ कहा रस-ढार सो।

कंजनि लाज कौ लेस नहीं, मृग रुखे, सने ये सनेह के सार सो।

चुंबक सामने न हो तो लोहा अप्रभावित रहता है। यहाँ यह विषमता है कि चुंबक (प्रिय) तो अवश्य है, लेकिन लोहा (आश्रय) अपनी जमीन से ऊपर उठ कर अधर में लटक कर रह गया है। यह स्थिति प्रकृत चुंबक और लोहे की कहाँ होती है?

संदेह

अस्थिर मनःस्थिति में (चाहे वह संयोगसुख के कारण हो, या वियोगदुख के कारण) संदेह का प्रयोग घनानन्द ने किया है। वियोगिनी अपने मन को ही नहीं समझ पाती कि वह क्या है?

- विष को दवा है, कै उदेग को अंवा है, कल/पलकौ न बाहै,
अथवा है चक्र बात को।/बीजुरी को बंधु, किधौं दुख ही को सिंधु, किधौं/महामोह-अंध दंड जतन अलाति को।/द्रोह को दिनेस, कै उजार निज देस, किधौं/आतम क्लेस है कि जंत्र सुख-बात को।/दैरी मन मेरो घनानन्द सुजान प्यारे, कैसे हित सीखौं जू तिहारे पच्छपात को।

संदेह ग्रलंकार में एक उपमेय के लिए अनेक उपमान मन में आते हैं। यहाँ अस्थिर मनःस्थिति वाले विरही को स्वाभाविक रूप में यह लगता है कि सारे अनर्थों के मूल में मेरा यह मन है। पता नहीं असल में यह क्या है? विष का डाला है, उद्वेग का अंवा है, बिजली का बंधु है (अनस्थिरता के कारण और दुख की चमक के कारण) अथवा दुख का समुद्र ही है। इसी क्रम में मन को द्रोह का सूर्य और अपना ही उजड़ा हुआ देश भी कहा गया है। 'अपना उजड़ा हुआ देश' इतना स्वाभाविक उपमान है कि आश्रय की पीड़ा को सहज ही उजागर कर

देता है। एक ही बात समझ में नहीं आती कि यह जो मेरा मन है वह तो मेरा भी वैरी है। इसने मैत्री सीखी ही नहीं। फिर अश्चर्य यही है कि (हे प्रवासी प्रिय !) यह तुम्हारा पक्षपाती कैसे बना हुआ है ? संदेह अलंकार की यह भाव-प्रवण छवि घनानन्द की ही देने हो सकती है। इससे तुलना राम-लक्ष्मण की मिथिला प्रवेश की मनःस्थिति के संदर्भ में केशव के प्रसिद्ध संदेह वाले छंद से की जा सकती है।

2. काली साड़ी में लिपटी प्रिया की छवि है :

स्थाम घटा लपटी थिर बीजु कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी ।

धूम कै पुंज में ज्वाल की माल-सी पै दृग-सीतलता सुखकारी ॥

कै छवि छायौ सिंगार निहारि सुजान-तिया-तन दीपति प्यारी ।

कैसी फटी घनआनन्द चोपनि सों पहरी चुनि सांवरी सारी ॥

प्रिया के गोरे शरीर पर ऊर्द्धसाहूर्वक चुनकर पहनी हुई काली साड़ी के लिए आने वाले उपमानों की योजना कवि ने संदेह अलंकार के अनुरूप प्रस्तुत की है। काली घटा में लिपटी हुई विद्युत स्थिर हो गई है अथवा अमावस की गोद में चांदनी (शिशुवत्) सुशोभित हो रही है। धूंए के पुंज में ज्वाल माला है—किंतु नेत्रों को शीतलता और सुख दोनों देने वाली है। स्मरणीय है कि प्रखर ज्वाला और धुआं दोनों नेत्रों को दुख, ताप और पीड़ा देने वाले हैं किंतु यहां जो उपमेय है वह सर्वथा अनुकूल नेत्रों का पोषक आधार है। इसलिए संदेह अलंकार की प्रकृति के अनुकूल विषम लगने वाला उपमान आ तो गया है किंतु कवि ने तत्काल अलंकार की प्रकृति की रक्षा करते हुए भी उपमान की संभावना दूसरी ओर सोड़ दी है। ज्वाला (नायिका के शरीर की कौश) और उस पर लिपटे हुए धूंए का आवरण (काली साड़ी) दोनों देखने वाले के नेत्रों को परम शीतल और सुंदर लगते हैं। उसके बाद का उपमान अपनी पूरी भव्यता के साथ पिछले चित्र को और प्रगाढ़ करता है—सुजान प्रिया के शरीर की दीप्ति को देखकर श्रृंगार रस इतना मुख्य हो उठा है कि अपनी संपूर्ण शोभा के साथ उसने उस सौंदर्य को आच्छादित कर लिया है। स्मरणीय है कि श्रृंगार रस का वर्ण श्याम माना गया है। यह उपमान श्रृंगार रस के वर्ण की सूचना के अभाव में अपना सौंदर्य प्रकाशित नहीं करेगा। फिर छंद का सार्विक प्रभाव अंतिम पंक्ति से और बढ़ जाता है जिसमें नायिका के शरीर पर फवती हुई साड़ी को पहनने के पीछे उसके मानसिक उल्लास को रेखांकित कर दिया गया है—चोपनि सो चुनि।

संदेह के चमत्कार के अतिरिक्त उपमान के विपरीत स्वभाव वाली विशेषता बतलाकर ज्वाला के समान (साड़ी को) आश्रय के नेत्रों को शीतलता पहुंचाने वाली कहा गया है।

3. एक छंद में वियोगिनी का वर्णन संदेह अलंकार के माध्यम से किया

गया है। विशिष्टता इस बात में है कि पूरे छंद में पीलेपन का नाम कहीं नहीं लिया गया है। सांग रूपक को बड़े कौशल से संदेह में बदलकर पीली पड़ी हुई वियोगिनी का मूर्ति चित्र खड़ा कर दिया गया है :

अंसुवानि तिहारे वियोग ही सोंबरणा-रितु बेलि सी बाल भई ।

हिय खोवनि चोवनि कोंपनि भालरि लाज के ऊपर छाय गई ॥

घनआनन्द जान सदा हित-झूमनि-झूमनि देखिये नित्त नई ।/

बलि नेकु मया करि हेरौ हहा अबला किधौं फूलि रही तुरई ॥

अपन्हुति

उद्विग्न मनःस्थिति और प्रिय के ध्यान में देशकालज्ञानशून्य वियोगी कुछ को कुछ समझ बैठता है। इसी संदर्भ में घनानन्द ने उपमेय का निषेध करके उपमान की प्रतिष्ठा की है :

1. है विपरीत महा घनआनन्द अंबर तें घर कों भर लाई ।/जारति अंग अनंग की आंचनि जोन्ह नहीं सु नई अगिलाई ।
2. बूदे न परति मेरे जान जान प्यारी, तेरे/बिरही कों हेरि मेघ आंसुनि झर्यौ करै ।

विशेषोक्ति

विभावना के विपरीत जहाँ प्रभूत कारण के होते हुए भी कार्य-संपादन न हो। इस दृष्टि से वियोग की बहुत-सी स्थितियों में विशेषोक्ति ध्वनित है। प्रिय के आने के कारण बहुत हैं, वह नहीं आता। कुछ छंदों में यह स्थिति स्पष्ट उभरती है :

1. महागुन गहै दोषै, ग्रीषद हू रोग पोषै/ऐसे जान रस मांहि विरह अनीति है ।
2. कैसे घरौं धीर बीर अति ही असाधि पीर,/जतन ही रोग याहि नीके करि टोह की ।

उपमा

समतामूलक अलंकारों में घनानन्द के प्रिय अलंकार हैं : उपमा और रूपक। सहज अकृत्रिम साम्य का प्रकाशन उपमा में हुआ है।

प्रिय की छवि घर में अंट नहीं रही है, उस नित्य बढ़ रहे सौंदर्य के लिए

उफनती हुई शोभा की नदी का उपमान आया है :

1. अंग अंग नूतन निकाई उझलनि छाई,/मौन भरि चली सोभा-
नदी लौ उफनि है ।
- वाचकलुप्ता उपमा । प्रिया की लावण्ययुक्त देहाष्टि में अपनी उठान (चोज-उत्साह) में कामदेव के तेज का दलन करने वाले उरोज ऐसे लगते हैं जैसे (प्रेमी के) मनोरथ की लता में फल आ गए हैं :

2. घनग्रानंद ओपित ऊंचे उरोजनि चोज मनोज की ओज दली ।/
गति ढीली लजीली रसीली लसीली सुजान मनोरथ बेलि फली ।

उफनती हुई ज्योत्सना और वियोगिनी के ऊपर उसका प्रभाव :

3. जोन्ह प्रलै के पयोनिवि लौं बढ़ि बैरिनि आजु वियोगिनि बोरति ।
सेना के प्रस्थान से पहले आवश्यक सामान आगे चला जाता है । वियोगिनी प्रिय के प्रति कह रही है कि मेरी आयु आगे जाने वाले सामान की तरह लद कर चली जा रही है, बीती जा रही है । उसके बाद अब प्राणों के प्रस्थान करने का समय होगा ।

4. कब आय हौ औसर जानि सुजान बहीर लौं बैस तौ जाति लदी ।
 5. लाली अधरान की रुचिर मुस्क्यान समै,/सब मुख भोर ही
सिद्धूरा की सी फैल है ।
- वैसे घनानन्द की वऋताप्रिय प्रवृत्ति उपमा जैसे सपाट अलंकारों में बहुत नहीं रसी है । फिर भी उपमाएं अत्यंत सुंदर हैं ।

रूपक :

विरोध की वक्ता रूपक में भी नहीं होती किंतु उपमा की अपेक्षा रूपक का प्रयोग घनानन्द ने अधिक छंदों में किया है । रूपकों में भी विरोध की विषमता उन्हें अत्यधिक आकर्षक बना देती है :

1. गुननि पकरि लै निपांख करि छोरि देहु,/मरहि न जिये महा-
विषम दया-छुरी ।

इसमें दया रूपी छुरी—उपमान उपमेय की परस्पर विश्वद स्थिति दर्शनीय है । इसीलिए वियोगिनी न मर पाती है, न जीवित रह पाती है । इसी छंद में एक और सुंदर रूपक है :

2. कैसें आसा द्रुम् पै बसेरो लहै प्रान-खग,/बनक-निकाई घनग्रानंद
नई जुरी ।
- प्राण-पक्षी के लिए एकमात्र आश्रय-स्थल है आशा रूपी वृक्ष । अब प्रिय की नई (बनक रूपी पक्षी फंसाने वाली विशेषता) धज देखकर प्राण-पक्षी उसके

आकर्षण को रोक नहीं पा रहे हैं, फँसता ही चाहते हैं।

विरहिणी के हृदय रूपी सागर से नेत्र रूपी मेघ व्यथा का जल लेकर रात-दिन बरसते रहते हैं :

3. विरहा-रवि सों घट व्योम तच्यौ विजुरी-सी छिवै इकली
छतियां !/हिय सागर तें दृग-मेघ भरे उधरे बरसैं दिन और
रतियां !...

नित सावन दीठि सुबैठक मैं टपकै बरुनी तिहि ओलतिया !!

विरोध का चमत्कार इस रूपक में भी नई छवि की भलक दे रहा है। दृग-मेघ उधर कर बरस रहे हैं (चाकर), धिर कर बरसने वाले मेघों से कितने विशिष्ट हैं ये ।

एक रूपक में प्रिय (आलंवन) के शरीर को रूप की लता और प्रेमी (आश्रय) की दृष्टि को उस रूप-लता को भक्तोरने वाली कहकर रूप और उसके प्रभाव की एक साथ व्यंजना कराई गई है :

4. लाड़ लसी लहड़कै मंहूकै अंग रूप लता लगि दीठि झकोरै ।

घनानन्द के ऐंद्रिय सौंदर्य-चित्रों की मुखरता का एक नमूना यह भी है। रूप की लता है नायिका की देह-लता जो सहज रूप में कुसुमित प्रफुल्लित है। भरी हुई है। लोचदार है। लेकिन जब प्रिय (आश्रय) की दृष्टि उसे (उस रूप की लता को) अत्यंत कोमलता के साथ हिलाकर छोड़ देती है, लाड़ से पुचकार देती है, तब उस रूप लता की छवि कुछ और ही हो उठती है। अपने संपूर्ण सौंदर्य को प्रिय की दृष्टि से नये सिरे से अनुप्राणित कर लेती है वह नायिका और तब उसका शरीर ऐसे मुश्ख भाव से हिल उठता है जैसे फूलों भरी डाल को किसी कोमल हाथ के हृतके इशारे से हिलाकर छोड़ दिया हो और वह हवा में इठला रही हो ।

प्रिया के रूप में यौवन रूपी सूर्य की आभा शिशुतारूपी रात के बाद उद्दित हुई है :

5. सिसुताई-निसि सिद्धराई बाल-ख्यालन में,/जोवन-विभाकर-उदोत-आभा है रली ।

बाल्यावस्था, यौवन और वृद्धावस्था को रात, दिन और सूर्योदय से अनेक कवियों ने उपमित किया है। तुलसी की योजना इस दृष्टि से अत्यंत प्रभावपूर्ण है—जरठाइ दिसा रविकालु उग्यो, अबहूं जड़ जीव न जागहि रे (—विनय-पत्रिका) यहां प्रसंग निर्वेद का है। उसी के अनुकूल रूपक की योजना है, वृद्धावस्था रूपी रात्री दिशा में कालरूपी सूर्य का उदय हो रहा है—हे जड़ जीव। तू अब भी तो जाग। घनानन्द का प्रसंग शृंगार का है। कमल की एक कली पूर्ण

विकसित पुष्प बनने को उम्मुख हो गई है। उसके लिए सूर्य का प्रखर प्रकाश चाहिए। वह प्रकाश वहीं है। रूपक में—शिशुता रूपी रात बीत चली है और यौवन रूपी सूर्य की आभा (नायिका की देह-दीप्ति में) भलक मारने लगी है। अभी उसको इसका आभास नहीं है, किन्तु ज्योंही आभास होगा वह एकाएक पाएगी कि यह यौवन-सूर्य तो अपनी प्रखरता से अनेक रसिक जनों को दग्ध कर रहा है। उसके नेत्रों की चोट से गिरिधर के वैर्यरूपी पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं:

6. तेरे नैन सुभट चुहट चोट लगें बीर,/गिरिधर-धीरता के किरचा करत हैं।

ऐसी प्रिया के मुख-कमल से निकलती हुई होली की गाली मकरंद के समान प्रेमी के कानों के रास्ते से प्रवेश करके उसके प्राणों का पोषण करती है :

7. कान हूँ पोखति प्रान प्रिये मुख-अंबुज चौं मकरंद-सी गारी। सांगल्पकों की योजना भी कवि को प्रिय है। कुछ सांगल्पक तो अपने में इतने पूर्ण हैं कि बिना उस पूर्णता के भाव-प्रभाव उस रूप में सम्भव ही नहीं हो पाता।

प्रिया के वचन के मादक आसव से प्रेमी के प्राण छके रहते हैं:

1. कंठ-कांच-घटी ते वचन चोखो आसव ले,/अधर पियाते पूरि राखति सहेत हैं।/रूप मतवारी घनानन्द सुजान प्यारी,/काननि हूँ प्राननि पिवाय पीवै चेत है।

प्रिया (आनन्द) के अधर वचन रूपी तेज आसव के प्याने हैं जो अत्यंत प्रीतिपूर्वक (सहेत) कंठघटी कांच की घटी (शारात्र का घड़ा—बड़े बड़े को खुम कहते हैं, उसमें से सुराही में ढाली जाती है फिर सुराही से व्याख्या में। यहाँ घटी का क्षेत्र सुराही से ही है।) से भर कर रख लिए गए हैं। दिलाने वाली पहले से ही अपने होश खो बैठी है, वह भी मतवाली है, फर्क इतना है कि उसका मतवालापन इस शारात्र का फल नहीं है। वह अधिक स्थायी नहा है। वह रूप-मतवारी है। अपने रूप से प्रमत्त है और साथ ही उसी से दूसरों को प्रमत्त करती रहती है। जो उसे देख लेता है उसे प्रमत्त होना ही है। ऊपर से वह सुजान भी है अर्थात् कभी अपनी चेतना को विलुप्त नहीं होने देती आश्रय के कानों के रास्ते अपने वचन की मदिरा उसे दिलाती है। एक और उसके वचन की तेज शराब सुनने वाले श्रवणों से पीता है, दूसरी ओर दिलाने वाली पीने वाले की चेतना का पान करती जाती है। यह समांतर किया राजस्थान का पीना: सांप करता है। सोए हुए आदमी की छाती पर बैठकर उसकी सांस को पीता रहता है और साथ ही अपना जहर उस आदमी की सांस के ही साथ उसके रक्त में उतारता रहता है। वह आदमी फिर कभी संचेत नहीं होता। घनानन्द ने सांपवाली लिजलिजाहट और भयंकरता दोनों को बचा दिया है।

यहाँ तो पुरा माहील मदिगच्छ का है जिसमें पिलाने वाली शराब पिलाती है और साथ ही पीने वाले के सर्वस्व का हरण करती है। पिलाने वाली की हरण-वृत्ति को भी बचाया है कवि ने। वह तो यही कहता है कि वह कानों से (आश्रय के) अपने अवरों की शराब पिलाती है और उसकी (पीनेवाले की) चेतना को स्वयं पीती जाती है। यह क्रिया भी पीने वाले के लिए अनुकूल और रसमयी ही होनी है।

काव्यानुभूति रूपी वधु और रसिक सुजान का रूपक अत्यंत प्रसिद्ध है :

2. उर-मौन में मौन को घूंघट कै दुरि बैठी बिराजंत बात-बनी ।

मन का प्रिया के रूप समुद्र में डूबने का वर्णन भी ऐसा ही है :

पानिप अनूप रूप जल कों निहारि मन,/गयौ हो बिहार करिबे
कों चाय ढरि कै ।

सौंदर्य के क्षेत्र में प्रसिद्ध उपमानों में शैवाल केशों के उपमान के रूप में आता है। इस बात को ध्यान में रखते हुए घनानन्द ने प्रिया के (आलंबन के) रूप समुद्र में (आश्रय के) मन के डूब जाने की बात के लिए रूपक बांधा है। होता यह है कि मन प्रिया के अपार रूप जल में बिहार करने पहुंच तो जाता है किंतु वहाँ से निकल नहीं पाता। निकलने का कोई आधार ही उसे नहीं मिलता। प्रिया की केशराशि को पकड़कर बचना चाहता है इसलिए डूबना और निश्चित हो जाता है। अंतिम पंक्ति प्रश्न के साथ समाप्त होती है—भला कोई डूबने वाला शैवाल पकड़ कर बच सका है?

प्रिया के रूप सैन्य द्वारा प्रेमी के हृदयरूपी गढ़ पर आक्रमण और अधिकार वर्णन :

4. रूप चमूप सज्यौ दल देखि,/भज्यौ तकि देसहि धीर भवासी ।

आलंबन के रूप-सैन्य का आक्रमण फेल पाना आश्रय के हृदय रूपी गढ़ के भीतर धैर्य रूपी किलेदार (नायक) के लिए संभव नहीं हो पाता। वह बेचारा क्या करता? जो रानी है महल की, रीफि—वह आक्रामक के साथ पटरानी बन कर बैठ गई। बुद्धि दासी बनकर ही बच सकी। ऐसे में धैर्य को (किलेदार को) देश छोड़कर भागना ही पड़ा।

रूपकातिशयोक्ति

सौंदर्य के विकास की उत्कांठा से युक्त वयःसंघि का चित्रण घनानन्द ने रूपकातिशयोक्ति के माध्यम से किया है।

सकुच-बिकच-दसा देखो मन आई मनौ,/चाहति कमल होन कोई
रूप की कली ।

रूप की कली खिलकर कमल पुष्प होना चाहती है, इस कथन से गौवनागम की सूचना में अपूर्व माधुर्य आ जाता है।

भेदकातिशयोक्ति

उपमेय के जोड़ का उपमान न मिलने पर उपमेय को 'और तरह का' 'विलक्षण' कहकर उसकी विशेषता अपरिसीम रूप में उद्घाटित की जाती है। घनानन्द ने कई छंदों में इसका प्रयोग किया है। विरहिणी संयोगसमय की तुलना वियोगावस्था से करती है :

जोई दिन कंत-साथ जीवन को फल लायो, सोई बिन अंत देत

अतंक दुहाई है।/इनकी तौ रही, मेरे अंग-अंग औरे भए,/सुखी
सुख-लता भालरति मुरझाई है।

संयोग में प्रिय के साहचर्य की आशा में मयूरों की बोली और ही तरह की लग रही है :

मोहन बांसुरिया सी बजै मधुरे गरजें धुनि में मति बौरे।/आज
की मोरन की सजनी चित दै सुनि लै कछु बोलनि औरे।

अनन्वय

प्रिया के नेत्रों के समान वे नेत्र ही हैं, अन्यत्र उनकी समानता करने वाली कोई चीज नहीं :

पैने नैन तेरे से न हेरे मैं ग्रनेरे कहुं,/घाती बड़े काती लिये छाती
पै रहैं चढ़े।

अद्भुत रूप वाली प्रिया के समान वह स्वयं है :

घनश्चानंद रूप-अनूप भरी हित-फंदन में गुन-ग्राम बसै।/सब
भाँति सुजान न आन समान कहा कहां आपतें आप लसै।

अन्य अर्थलिंकारों में उदाहरण, दृष्टांत, उत्प्रेक्षा, तदगुण, यथासंख्य, भ्रांति-मान, अर्थन्यास आदि का प्रयोग घनानन्द ने एकाव छंदों में ही किया है किंतु जहां भी ये अलंकार आए हैं, उनकी कला दृष्टि की प्रौढ़ता और सुक्षमता का परिचय देते हैं।

शब्दालंकारों में अनुप्रास को घनानन्द जैसे कवियों की रचना में अलग से ढूँढ़ना व्यर्थ है। इनके छंदों की एक-एक पंक्ति में अनुप्रास का लालित्य भलकता है। कह सकते हैं कि अनुप्रासिकता घनानन्द की भाषा का सहज घर्म है। कोई छंद ऐसा नहीं है जिसमें समान वर्णों या घनियों का संगीत न सुन पड़ता हो।

इलेष प्रायः आनन्दघन या घनश्चानन्द शब्द में प्रत्येक छंद में देखा जा सकता है। ऐसे ही घनश्चाम और सुजान भी प्रायः शिलष्ट रूप में ही आए हैं। इसके

अतिरिक्त इलेष के चमत्कार प्रायः नहीं के बराबर हैं। वैसे जो विरोध की वक्रता घनानन्द में सर्वत्र सुलभ है उसमें इलेष का प्रयोग आधार के रूप में किया गया है।

यमक का प्रयोग अधिक है। यमक का चमत्कार विरोध का चमत्कार प्रस्तुत करने में प्रायः सहायक हुआ है :

1. रावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै ।
2. अंतर में बासी पै प्रवासी कैसो अंतर है ।
3. सुधि दैन कहीं सुधि लैन चहीं सुधि पाएं बिना सुधि आवति ना ।
4. नांव धरे जग में घनआनंद नांव संहारी ती नांव सही क्यों ।

इस प्रकार के चमत्कार के लिए सभंग यमक भी प्रयुक्त हुआ है :

5. अंतर हौं किंधीं अंत रहौं दृग फगरि फिरौ कि अभागिन भीरौ ।
6. सो मुरुनी घनआनंद की तिनि तान भरी कित भौंहनि तानति ।

मनोरथ के यमकरूप में प्रयोग द्वारा कवि एक लंबी कथा को संदर्भित कर देता है :

7. मेरो मनोरथ हूं वहिये अरु हूं मो मनोरथ पुरनकारी ।

कवि कृष्ण से प्रार्थना कर रहा है। प्रार्थना किसी अभीष्ट फल की प्राप्ति के लिए नहीं है, बल्कि भक्ति के क्षेत्र में पूर्ण आत्मसमर्पण की स्थिति की सूचना देने वाली है। भक्त भगवान पर ही अपनी संपूर्ण मनोवृत्ति को सौंप देना चाहता है। 'मैं यह चाहता हूं कि मेरी इच्छा पूरी करें' ऐसा कहने के स्थान पर वह यही कहता है : 'मेरी मनोवृत्ति को ही आप संचालित करें। आप ही निश्चित करें कि मेरी क्या इच्छा हो।' यह बात कहने के लिए अर्जुन के मारथी कृष्ण का स्मरण किया गया है। संकेतित है कि आपने अर्जुन के रथ का संचालन किया, अब मेरे मनोरथ का भी संचालन करें। अद्भुत कौशल के साथ घनानन्द के मनोरथ के साथ 'हूं' (भी के अर्थ में) लगाकर पूरी कथा को संदर्भित कर दिया है।

अलंकारों के संबंध में इतना ही कहा जा सकता है कि घनानन्द भावावेग के कवि होते हुए भी कलात्मक सौंदर्य के प्रति कम आग्रहशील नहीं हैं। यह दूसरी बात है कि अनेक रीतिकालीन कवियों की तरह घनानन्द का काव्य अलंकार मोह से ग्रस्त नहीं है।

घनानन्द के काव्य में लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य

आचार्य शुक्ल ने घनानन्द के काव्य पर विचार करते हुए लिखा है कि 'लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और प्रयोग वैचित्र्य की जो छटा उनमें दिखाई पड़ी, ज्ञेद है कि वह फिर पौने दो सौ वर्ष पैछे जाकर आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में अर्थात् वर्तमान काल की नूतन काव्यधारा में ही 'अभिव्यंजनावाद' के प्रभाव से कुछ विदेशी रंग लिए प्रकट हुई।¹

स्पष्ट ही शुक्ल जी का संकेत छायावादी काव्य में मिलने वाली विशेषताओं की ओर है। जो विशेषता घनानन्द में मिली वह छायावाद से पहले हिंदी कविता में दुर्लभ ही रही। छायावादी काव्य की व्याख्या करते हुए आचार्य शुक्ल ने अपना वह संकेत स्पष्ट कर दिया है: 'हिंदी काव्य परंपरा में अन्योक्ति पद्धति का प्रचार तो रहा है, पर लाक्षणिकता का एक प्रकार से अभाव ही रहा। केवल कुछ रुढ़ लक्षणाएं मुहावरों के रूप में कहीं-कहीं मिल जाती थीं। ब्रजभाषा कवियों में लाक्षणिक साहस किसी ने दिखाया तो घनानन्द ने।'²

घनानन्द के लाक्षणिक प्रयोगों का सौंदर्य ही उनके काव्य को अपने समकालीनों से या अन्य रीतिकालीन कवियों से अलग करता है। छोटे-छोटे भावों को इस पूर्णता के साथ घनानन्द मूर्तिमान करते हैं कि उन भावों का एक व्यक्तित्व अलग उभरकर प्रवाह को तीव्रतर कर जाता है।

विरही की अंगों की व्यथा सर्वाधिक होती है। अन्य अंगों की अपेक्षा उनकी तड़प तीव्रतर होती है क्योंकि प्रिय के रूप के साथ पहला संपर्क उन्हीं का होता है। घनानन्द ने आंखों की व्यथा को इस प्रकार चित्रित किया है कि विरही की आंखें एक अंगमात्र न रहकर स्वतंत्र व्यक्तित्व संपन्न दियोगिनी हो गई हैं:

देखियै दसा असाध अंखिया निषेटनि की/भसमी विथा पै नित
लंघन करति है।

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 322, 23

2. वही, पृ० 639, 40.

भस्मक रोग वाली इन आंखों का व्यक्तित्व पूर्ण और निजी है। इसी प्रकार प्रिय के आने की आशा में आंखों को चिता, अभिलाषा, कंप, रोमांच, उत्कंठा आदि समस्त अनुभावों को व्यक्त करने वाली पूर्ण वियोगिनी के रूप में चित्रित किया गया है :

अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बरुनीन रुमांच हँ कांपति

हैं। /घनआनन्द जान सुधाधर-मूरति चाहनि अंक में चांपति हैं। /

टग लाय रहीं पल पांड़े कै सु चकोर की चोपनि चांपति हैं। /

जवते तुम आवनि औषिं बढ़ी तब तैं ग्रंखियां मग मापति हैं।

संयोग का एक चित्र है। आश्रय और आलंबन (नायक-नायिका) की बात अलग है। दोनों के नेत्रों ने ही स्वतंत्र व्यक्तित्व धारण कर लिया है और परस्पर छक कर होली खेल रहे हैं :

चोप-चाह-चांचरि, चुहल चोख चटकीली,/गटक निवारै टारे

कुलकानि-दीचि कै।/धात लै अनूठी भरे चेटक चितौनि-मूठी।

धूंधरि चिलक चौंच बीच कोंध सों टिकै।/भीजे घनआनन्द

मुजान के खिलार दूग,/नैसिक निहारे जिनकी निकाई पै बिकै। /

रूप-अलबेली सु नवेली ए री तेरी आंखें,/ताकि छाकि मारै हुरि-

हाई न कहूं छिकै।

प्रिया (आलंबन और आश्रय साथ-साथ) की आंखों की गतिशीलता की दृष्टि से यह छंद अद्भुत है। होली खेलने वालों का संपूर्ण ओज, उत्साह और खिलंद-डापन इन आंखों में मूर्त हो उठता है।

आंखें तो आंखें, 'आंसू' भी घनानन्द के काव्य में वियोगी का स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त कर लेते हैं :

जौ कहूं जान लखैं घनआनन्द तौ तन नेकु न औसर पावत। /

कानै बियोग-भरे अंसुवा जु संजोग में आगेई देखन धावत। /

पांवों के सौंदर्य का वर्णन शृंगारकाव्य में मिल जाता है किन्तु घनानन्द में वह इस रूप में है कि 'पांवों के हाथ' में (प्रेमी का) मन पड़ जाता है, उसका छूटना कठिन है :

अलबेली सुजान के पायनि-पानि पर्यौ न टर्यौ मन भेरे भवा।

सुजान के पांवों का स्वतंत्र व्यक्तित्व है, जिसके हाथों प्रेमी का मन पड़ गया है।

वैसा ही अलग व्यक्तित्व मन का है, जिसके पास अपना एक अलग मन है :

बूझौ कहैं कहा एक कृपा करि रावरे जौ मन के मन मानै।

भगवत्कृपा का वैसा ही स्वतंत्र व्यक्तित्व है। ईश्वर के अन्य गुणों के आलस्य में पड़े रहने पर भी वह कृपा आतुर रहती है :

आतुर न हँ री अति चातुर विचार थकि,/और सब ढीले कृपा ही के अति आतुरी।

अकुलानि का अलग व्यक्तित्व है, जिसके हाथों वियोगी पड़ गया है :

अकुलानि के पानि पर्यौं दिन राति सु ज्यौं छिनकौं न कहूं
बहरै ।

प्रिय की बानि (आदत) ऐसी थी कि वह तुरंत कृपा करता था। अब उसकी उस बानि को आजस घेर रहा है, प्रेमी उसका कोई कारण नहीं समझ पाता :

अरसानि गही उहि बानि कछूं सरसानि सों आनि निहोरत है ।

प्रिय भूल जाने की आदत वाला है। उसकी यह आदत भी अपना अलग व्यक्तित्व रखती है :

मैं बिसरनि रावरी हमें लै बिसरति है ।

मरणासन्न वियोगी की उसांस का भी मूर्तिमान व्यक्तित्व है जिसके गले में आशा रूपी फंदा मृत्यु के बाद भी पड़ा रह जाएगा :

धुरि आस की पास उसास-गरे जु परी सु मरे हूं कहां छुटि है ।

कहीं से किसी व्यक्ति के आने में अनावश्यक विलंब होता है तो व्यंग्यपूर्वक कहा जाता है, उनके पांवों में मेहदी लगी है, कैसे आवें? वियोगी प्रिय के पास से आने वाले उत्तर की प्रतीक्षा में पल-पल को पहाड़ की तरह काट रहा है, उधर उत्तर है कि नहीं आता, तो नहीं आता। इस पर प्रेमी का कथन है :

घनआनन्द जानन कान करै इत के हित की कित कोऊ कहै । /

उत उत्तर-पांय लगी मिहदी स कहां लगि धीरज हाथ रहै ॥

प्रिय के पास से आने वाले उत्तर के पांवों में मेहदी लग जाने के मुहावरे का प्रयोग आलंकारिक आग्रह का फल नहीं है, भाव से उफनते हुए हृदय का सहज उद्गार है जो विलंब के प्रति खीज और व्यंग्य को उभारता है। यह खीज और व्यंग्य भीतरी लंगाव की गाढ़ता के सूचक हैं। आंख, पांव, मन या उत्तर का व्यक्तित्व तो है ही, रंग जैसे अचेतन पदार्थ में भी घनानन्द का प्रेमविह्वल चित्त पूर्ण और स्वतंत्र व्यक्तित्व का विद्वान करता है।

होली पर प्रेमी प्रिया के ऊपर रंग फेंकता है। प्रिया रंग से झींग जाती है। उसके अद्भुत रूप को देखकर रंग स्वयं रीझकर मोहमुग्ध हो जाता है :

दीठी मिलें मुरि पीठि दई हिय-हेत की बात सकै कहि को है । /

सैननि ही बरस्यौ घनआनन्द भीजनि पै रंग रीझनि मोहै ॥

लक्षणा के सहारे इतनी सहजता और स्वाभाविकता के साथ खड़े किए गए ये मूर्तिविधान कवि के भाषा के अद्भुत ज्ञान के साथ ही रागाविभोर अंतःकरण की कथा कहते हैं। आचार्य शुक्ल ने घनानन्द की इसी विशेषता को लक्ष्य करते हुए लिखा है : 'भाव का स्रोत जिस प्रकार टकराकर कहीं-कहीं बक्रोक्ति के छींटे

फेंकता है उसी प्रकार कहीं-कहीं भाषा के स्तिंगध, सरल और चलते प्रवाह के रूप से भी प्रकट होता है।¹ कवि का हृदय प्रणथानुभूति से इतना लबालब भरा हुआ है कि बराबर उफनता रहता है। छंदों का रूप धारण करके बाहर आते-आते वही कविता में रूपांतरित हो जाता है। घनानन्द की भाषा की असाधारण क्षमता इस बात का प्रमाण है कि उनके लिए काव्यानुभूति और जीवनानुभूति में अन्य शृंगारी कवियों (विशेषतः रीतिकालीनों) जैसी दूरी नहीं है। उनकी एक-एक सांस उनकी कविता है। उनका यह कथन उनकी सारी विशेषताओं की और संकेत करता है कि 'लोग हैं लागि कवित बनावत, मोह तो मारे कवित बनावै' इसीलिए 'रंग' भी उनके काव्य में रंगीले रसिक का व्यक्तित्व धारण करके प्रिया के रंग भीने रूप पर—उसके भीगने पर—रीझ जाता है। यह रीझ कवि की रीझ और उसकी गहराई का पता बताती है। इसी गहराई और 'निजीपेन' का परिणाम है कि आलोचकों को ऐसा जान पड़ता है कि उन भाव की इससे शाढ़ी अभिव्यक्ति हो नहीं सकती जैसे इनके छंदों में हुई है।²

प्रयोग वैचित्र्य घनानन्द की वाणी की सहज विशेषता है। यह तथ्य नहत्व-पूर्ण है कि प्रयोगों की विलक्षणता अधिकांश कवियों में भाषा की सहज ना, काव्य की प्रेषणीयता और अनेक काव्यगुणों का अहित करने वाली साबित होती है। इसके लिए पर्याप्त कारण भी हैं। जब वैचित्र्य का मोह कवि को ग्रस्त करता है तो वह सामान्य भाषा प्रवाह से संतोष नहीं करता। वह अनेक वैचित्र्य प्रयोगों की ओर आकर्षित होता है जो वैचित्र्य का मजा तो पाठक को देते हैं किन्तु 'कविता' की उसी हृद तक हृत्या करते हैं। चमत्कारी कवियों (केशवदास, सेनापति आदि) को छोड़ भी दें, भावप्रवण कवियों तक में चमत्कारमोह से किए गए वैचित्र्य प्रयोग उनकी कविता का अहित करते हैं। जायसी जब इस मोह से ग्रस्त होते हैं तो विचित्र शब्द क्रीड़ा करते हुए दृष्टि के भाले से कलेजे में धाव करते हैं और कुच की तूंबी लगाकर उसका इलाज करने लगते हैं (गोरा बादल प्रसंग)। सूर इस प्रकार के वैचित्र्य के लिए अद्भुत बाग लगते हैं जहाँ कमल पर हाथी खड़ा होता है, हाथी पर सिंह और सिंह की पीठ पर सरोवर ('अद्भुत एक अनूपम बाग' वाला पद)। यहाँ तक कि रीति स्वच्छंद कहे जाने वाले कवियों—आलम और बोधा तक में ऐसा प्रयोग-वैचित्र्य मिल जाता है जो उनकी सहज कविता को बाधित करता है।

दूसरी ओर घनानन्द हैं जिनके छंदों में प्रयोग-वैचित्र्य सहज गुण के रूप में आता है। तब भी कहीं काव्य की अन्य कोई विशेषता उससे बाधित नहीं होती। प्राय यह वैचित्र्य विरोध के रूप में आता है किन्तु भाव प्रवाह को तीव्रतर करता

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 323,324

2. हिंदी रीति साहित्य, पृ० 124

हुआ यह विरोध इतना सहज है उनके यहाँ कि 'साहसपूर्वक यह कहा जा सकता है कि जिस पुस्तक में कहीं भी यह प्रवृत्ति न दिखाई दे उसे बेखटके घनआनन्द की कृति से पृथक किया जा सकता है और जहाँ यह प्रवृत्ति दिखाई दे उसे निःसंकोच इनकी कृति घोषित किया जा सकता है।'

विरोध के इस प्रकार के वैचित्र्य के मूल में लक्षणाशक्ति से लेकर लोकोक्तियों और मुहावरों तक का उपयोग घनानन्द ने किया है।

विरोध से उत्पन्न प्रयोग-वैचित्र्य के उदाहरण अलंकारों के प्रसंग में दिए जा चुके हैं। बहुत से प्रयोग ऐसे हैं जिनमें वैचित्र्य इस बात का है कि वहाँ विरोध स्पष्ट दीखता हुआ भी अर्थ के स्तर पर नहीं होता। विरोध तो भाव को तीव्रतर करने भर के लिए आता है। जैसे :

उजरनि बसी है हमारी अंखियानि देहौ,/सुबस सुदेस जहाँ

भावते बसत हौ ।

अपार दुख और निराशा के कारण आंखों का सूनापन, उजाड़पन स्पष्ट है। इस उजाड़पन के लिए इसकी दीक विरोधी किया 'बसना' का प्रयोग नेत्रों में उजाड़पन के नैरंतर्य का सूचक है। उजरनि स्थायी होकर रह गई है। विरोध का चमत्कार ऊपरी है और आंखों के उजाड़पन को तीव्रतर करता हुआ समाप्त हो जाता है। ऐसे ही :

तेरे ज्यौं न लेखों, मोंहि मारत परेखो महा,/जान घनआनन्द पै
खोयबो लहृत है ।

कुछ न कुछ पाना है, प्राप्ति के नाम पर प्रिय को 'खो देना' ही मिलता है। यह 'खो देना' बार-बार 'मिलता' रहता है।

चमत्कार आत्म-विस्मृति में भी प्रकट होता है। अपने को अपनी खबर न होना एक स्थिति है, घनानन्द उसको एक विचित्र रूप में प्रस्तुत करते हैं :

सुधि कबहूं न आवै भूलेल तनक नाहिं,/सुधि तिनहीं मैं तेई
सुधि मैं सदा रहै ।

आमने-सामने दो शीशे खें हों, तो दोनों के भीतर दोनों दूर-दूर तक एक-दूसरे में उभरते दीखते हैं। यहाँ वियोगी को अपनी सुधि पल भर को भी नहीं आती उधर प्रिय की सुधि पल भर भी विस्मृत नहीं होती है। प्रेमी की सुध-बुध प्रिय में खो गई है, उसकी सुधि में केवल प्रिय बस गया है। इस चित्र के भीतर बहुत दूर तक यह जादू चलता जाता है।

वियोगी के नेत्रों से अश्रुप्रवाह चलता रहता है, साथ ही उन नेत्रों के सम्मुख प्रिय की छवि अंकित है। यह विरोध के चमत्कार से आगे की, उससे ऊंची चमत्कृति है जो पूर्ण स्वाभाविक है :

लिखि राख्यौ चित्र यौं प्रवाह रूपी नैननि पै,/लही न परति
गति ऊलट अनेरे की /रूप को चरित्र है अनंदघन जान प्यारी,/

ऐ किंधौं विचित्रताई मो चित-चितेरे की ॥

यह रूप का वैचित्र्य है या चित्त रूपी चितेरे का कमाल है। इतना निश्चित है कि घनानन्द की भाव-भरी भाषा की अपूर्व क्षमता से यह संभव हो सका है।

वियोग की आंखों की व्यथा के लिए यह उक्ति देखिए :

देखिये दसा असाध अविद्यां निपेटनि की,/भसमी विद्या पै नित
लंघन करति हैं ।

'निपेटनि' की वक्र-व्यंजना उस सीमा तक पेटू होने की है जो कभी तुप्ति का प्रनुभव करता ही नहीं। ऐसी आंखों को भस्मक रोग हो गया है जिसमें भोजन की कोई मात्रा, खाने वाले को तृप्त करने में समर्थ नहीं होती है। उस पर उन आंखों को लंघन (उपवास) करना पड़ता है। उपवास भी बीच-बीच में नहीं, नित्य। ऐसी आंखें जीवित बची हैं, यही आश्चर्य है।

वियोगिनी की मरण दसा की संभावना का कथन :

औसर सम्हारी न तौ अनआयवे के संग,/दूर देस जायबै कौं
प्यारी नियराति है ।

अनआयवे (न आने की स्थिति) के साथ वियोगिनी दूर देश जाने (की क्रिया) की ओर बढ़ती हुई अब पहुंचने को ही है (नियराति है) तीन-तीन स्तरों पर क्रिया की अभावात्मक सत्ता की उपस्थिति से उत्पन्न वैचित्र्य भाव-प्रवाह को प्रखर बनाता हुआ आगे बढ़ता है।

घनानन्द के प्रयोगों की विचित्रता चौकाने में नहीं है। भाव की विशद और सूक्ष्म व्यंजना के लिए उनके द्वारा वाणी का जो आयोजन किया जाता है वह दूसरे कवियों में न मिलने के कारण पाठक को वैचित्र्य का आनंद देता है, अन्यथा वह कवि के लिए अत्यंत सहज और स्वाभाविक है। उनके महत्वपूर्ण छंदों में साहस्री का वैचित्र्य इसका प्रमाण है:

1. उर-भौन में मौन के धूंधट कै दुरि बैठी विराजति बात बनी ।
2. ईछन तीछन बान बखान सो पैनी दसानि लै सान चढ़ावत ।
3. कंत रमै उर अंतर में सु लहै नहीं क्यों सुख रासि निरंतर ।
4. प्रेम को महोदयि अपार हेरि कै विचार/बापुरो हहरि बार ही ते
फिर आयो है ।

प्रयोग-वैचित्र्य घनानन्द के काव्य में लोकोक्तियों के स्तर पर बहुत मिलता है। लोकोक्तियों का काव्य में प्रयोग करना किसी वैचित्र्य का कारण अपने आप में नहीं है, प्रायः सभी कवि किसी न किसी रूप में अपनी भाषा में प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का काव्य में प्रयोग करते हैं। घनानन्द ने लोकोक्ति और मुहावरों को अपनी विशिष्ट वक्रता और परिष्कृति के साथ छंदों में रखा

है जिससे उन मुहावरों की व्यंजकता अद्भुत रूप में बढ़ जाती है। डा० मनोहर-लाल गौड़ ने घनानन्द के छंदों से एक सौ एक मुहावरों को छांट कर एकत्र किया है।¹ किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर अधिकांश मुहावरों को नई दीप्ति मिली है, इस बात की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है:

प्रीति पगी अखियानि दिखाय कै हाय अनीति सु दीठि छिपैये।

'आंखें दिखाना' इस मुहावरे का प्रयोग उस सामान्य अर्थ में नहीं हुआ है किन्तु ऐसा भी नहीं है कि 'प्रीति पगी अखियानि दिखाय' की नवीनता में कोई दुरुहता आई हो। इसके साथ ही 'दीठि छिपाना' का प्रयोग दोनों मुहावरों को नई आभा दे देता है:

'किसी के हाथों पड़ना' उसके बश में हो जाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है यहाँ :

अकुलानि के पाति पर्यौ दिन राति सु ज्यौ छिनकी न कहूं बहरै।

अमूर्त भाव को मूर्त रूप देकर तब उनके हाथों वियोगी का पड़ना दिखाना चालू मुहावरे का अत्यंत कलात्मक प्रयोग है।

दो बातों में 'जमीन आसमान' या 'दिन रात का अंतर पड़ना' मुहावरा है। घनानन्द ने वियोगिनी के हृदय की अकथनीय दशा के साक्षी के रूप में रात दिन को रखते हुए इस मुहावरे को नई शक्ति प्रदान की है:

जो दुख देखति हैं घनग्रानन्द रैन-दिना, बिन जान सुतंतर।

जानै वेई दिन राति बखाने तें जाय परै दिन राति को अंतर॥

किसी उपलब्धि के आते-आते अनुपलब्ध हो जाने के लिए 'हाथ से निकल जाना' और उसके लिए पछताने को 'हाथ मलना' कहते हैं। इन दोनों मुहावरों का एक संयोग चित्र में घनानन्द ने इस प्रकार उपयोग किया है कि एक विलक्षण मृति-मत्ता आ गई है। प्रेमी हूली के अवसर पर प्रिया को पकड़ कर उसके अंगों में गुलाल मलना चाहता है। वह बिजली की तेजी से हाथ से निकल जाती है:

कोटि दामिनीनि के दलनि दलमलि पाय, / दाय जीति आय भुंड

मिली है सयान सौ। / मीड़िबे के लेखे कर मीड़िबोई हाथ लयौ,

सो न लगी हाथ रहौ सकुचि सखान सौ॥

वह हाथ नहीं लगी। प्रेमी हाथ मलता रह गया। लेकिन इतना ही नहीं है। हाथ मलने वाले मुहावरे को जिस नई दीप्ति से घनानन्द ने प्रकाशित किया है वह 'मीड़िबे के लेखे' में रखी हुई है। कहाँ तो प्रिया के अंगों को अबीर गुलाल के साथ मलने की आतुर कामना और कहाँ केवल हाथ मलते रह जाने की नियति? मुहावरा घनानन्द का स्पर्श पाकर स्वयं प्रकाशित हो उठा है।

1. घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 134-142.

पांव लगता या पांव पड़ना और हाथ लगता, इन दोनों मुहावरों को एक विशिष्ट क्रम में साथ-साथ रखकर कवि ने विलक्षण प्रयोग किया है :

मन मेरो महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै ।

प्रेमी का कथन है कि उसका मन प्रिय के पांवों से लग कर अब उसके हाथ नहीं आता । पांवों से लग कर हाथ न लगने के विशिष्ट क्रम में आने के कारण दोनों मुहावरे नई शक्ति और दीप्ति से भर उठते हैं । 'बेमौत मरना' मुहावरा है । घनानन्द ने 'बिना जीवन के जीने' के साथ रखकर (क्योंकि वियोगी का जीवन प्रवासी प्रिय के पास है) घिसकर साधारण से रह जाने वाले मुहावरे को पुनरुज्जीवित कर दिया है :

एहो सुजान दुहेली दसा दुख हाथ लगें हूं न छीजत दीबो ।/है

घनआनन्द सोच महा मरिबो अनमीच बिना जिय जीबो ।

जैसे बिना जीवन के जी रही हूं वैसे ही बिना मौत के मर रही हूं—यह दशा निरंतरता के कारण और अधिक कष्टप्रद है ।

इस प्रकार की विचित्रता की झलक घनानन्द के प्रायः सभी छंदों में किसी न किसी रूप में मिल जाती है । शब्दों और मुहावरों को जरा से परिवर्तन के साथ घनानन्द इस रूप में प्रस्तुत कर देते हैं कि उनमें कई तरह की अर्थ-छवियाँ खिल उठती हैं । यह विशेषता इसलिए आती है कि उनकी तीव्र अनभूति का योग उनकी भाषा को मिला हुआ है । इसी विशेषता को लक्ष्य करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा था कि : 'इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ और वह पहले से कहीं अधिक बलवती दिखाई पड़ी ।'¹ कहने की आवश्यकता नहीं कि एक-एक मुहावरा घनानन्द के छंदों में आकर नये अर्थ-गौरव से दीप्त हो गया है । प्रयोग-वैचित्र्य का सबसे बड़ा रहस्य यही है कि जो प्रयोग अन्य कवियों में इतने साधारण हैं कि पाठक का ध्यान नहीं खींच पाते, वे ही घनानन्द के छंदों में नये और विलक्षण हो उठते हैं, उसे लगता है, यह अर्थ भी इस मुहावरे की शक्ति के भीतर था, इसे पहले कभी देखा ही नहीं ।

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 322.

घनानन्द की ब्रजभाषा का स्वरूप और उसकी विशेषताएँ

जो कवि भाषा की क्षमता को अपनी गंभीर अनुभूति के सामने छोटा सिद्ध कर दे और साथ ही भाषा के बाहर की बात का प्रकाशन करने वाली भाषा का निर्माण भी कर सके, उसकी भाषा की विशेषताओं का निरूपण काव्यभाषा की सामान्य कसौटी पर होना संभव नहीं है। घनानन्द की प्रणयानुभूति के समान ही उस अनुभूति को प्रकाशित करने वाली उनकी भाषा को भी केवल महसूस किया जा सकता है, उसका विच्छेदन करके अलग-अलग दिखाया नहीं जा सकता। उनके एक-एक छंद में भाषा की शक्ति से अभिभूत होकर यही लगता है कि यहाँ भाषा की एक नई छवि, एक नई अदा दिखाई पड़ रही है। उस नई छवि को भावक का चित्त धारण कर सकता है किन्तु स्थूल रूप में उसका प्रदर्शन संभव नहीं है। आचार्य शुक्ल घनानन्द की भाषा पर विचार नहीं कर रहे थे, इतिहास की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए परिचय मात्र दे रहे थे, किन्तु उन्होंने घनानन्द की भाषा की उस विशेषता को लक्ष्य करके ही लिखा कि : 'इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ'।¹ घनानन्द की काव्यभाषा की इसी विशेषता की ओर संकेत किया, उनके छंदों के संग्रहकार ब्रजनाथ ने। उन्होंने घनानन्द की कविता को समझने के लिए जो शर्तें रखीं, उनमें 'ब्रजभाषा-प्रवीन' के साथ ही 'भाषा-प्रवीन' की शर्त भी थी। ब्रजनाथ जैसे संवेदनशील भावक पुनरुक्ति के दोषी नहीं हो सकते, अतः निश्चय ही यह प्रवीणता काव्य-भावक की ही हो सकती है जिसके अभाव में घनानन्द की कविता का आस्वादन संभव नहीं हो सकता है। इसी को लक्ष्य करते हुए आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र कहते हैं कि : 'घनानन्द ने तो ऐसे-ऐसे पथों से भावना को ले जाने का साहस किया है जिन पर पुराने कवि तो गए ही नहीं, नये कवि भी जाने का साहस कम करते हैं।'² 'भावना जिन नये पथों पर ले जाई गई है, वे भाषा के वे पथ हैं

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 322. 2. घनधानन्द कविता, प्रस्तावना, पृ० 9.

जिनसे सबका परिचय नहीं होता। इसीलिए घनानन्द में दुरुहता भी कुछ लोग देखते हैं।¹ और इसी विशेषता के लिए उनकी काव्यभाषा को 'नितांत निजी भाषा' कहा गया है।² व्यंजनाशक्ति अत्यंत समर्थ कवियों की काव्य-भाषा में ही सहज रूप में प्रकट होती है। उसके लिए कवि का भाषा पर असाधारण अधिकार होना चाहिए। जो ध्वनि काव्य से व्यंजित होती है वह कहीं पूरे वाक्य, कहीं पदों और कहीं शब्दों की सहायता लेती है। इनके अनुसार उसके भेद किए जाते हैं। व्यंजना की श्रेष्ठता इस बात में भी होती है कि उसमें कम से कम शब्दों में अधिक अर्थ की छवियां प्रकाशित हो जाएं। घनानन्द की इस विशेषता के प्रमाण उनके छंदों में पग-पग पर मिलते रहते हैं, किन्तु कहीं-कहीं तो केवल एक पदांश की ध्वनि से गंभीर और विशद अर्थ व्यंजित हो जाते हैं :

'मेरो मनोरथ हूँ बहिये अरु हैं मो मनोरथ पूरनकारी ।'

केवल 'हूँ' ('भी' के अर्थ में) से यह ध्वनित किया गया है कि हे भगवान कृष्ण ! आपने अर्जुन के रथ को मार्ग से लगाया था, वहन किया था, अब मेरा 'मनोरथ भी बहिए। आपका यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि आप ऐसा करें क्योंकि पहले भी आपने भक्तों के लिए ऐसा किया है।³

मनोरथ वहन करने अर्थात् मनोरथ का नियोजन करने की प्रार्थना भक्त के हृदय की वह पुकार है जिसमें वह अपना संपूर्ण समर्पण व्यक्त कर देता है। भगवान को यह भी करना है कि भक्त की इच्छा को नियंत्रित करे, तब उसकी पूर्ति करने की कृपा करें : यह सब केवल 'हूँ' से ध्वनित है। वाक्य रचना में, गद्य में भी, किसी शब्द या पद पर स्वराधात देकर विशेष अर्थ ध्वनित किया जाता है। यह कार्य नियति द्वारा भी किया जाता है। 'घनानन्दजी ने ई (ही), ऐ, इहे (एव) आदि ब्रजभाषा के निपातों का अर्थव्यंजना के लिए प्रयोग किया है। नीचे लिखे काकु वाक्य में 'ई' की अर्थ व्यंजना इसी श्रेणी की है :

रूप सुधारस प्यास भरी नित ही अंसुवां ढरिबोई करैगी ।

पावन साध असाध भई इहि जीवनि यौं मरिबोई करैगी । /हाय

महादुख है सुख दैन विचारौ हियैं भरिबोई करैगी । /क्यों

घनआनन्द भीत सुजान कहा अंखियां बहिबोई करैगी ॥

यहां 'ढरिबोई' आदि में 'ई' भविष्य के संयोग सुख की निराशा के आक्षेप से प्रिय की कठोरता की व्यंजना करता है। इसी प्रकार प्रान पपीहा पनैई पढ़े तथा 'चौरई लेत लुनाइयै की लच्छमी' आदि वाक्यों में 'ई' निपात विशेष 'अभिप्राय से

1. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 375.

2. वही, पृ० 373-377.

3. घनआनन्द कविता, प्रस्तावना, पृ० 10-11.

प्रयुक्त हुआ है :

‘आरतिवंत पपीहन को घनग्रानंद जू पहिचानो कहा तुम ।’

और

‘इत बांट परी सुधि रावरे भूलनि कैसो उराहनो दीजिए जू ।’

आदि वाक्यों में ‘जू’ पद अपराधी प्रिया के प्रति सत्कार का वाचक होकर मधुर आक्षेप की व्यंजना करता है। इस प्रकार की एक पदद्योत व्यंजनाओं की सिद्धि के लिए घनानन्द ने निपातों का प्रचुर प्रयोग किया है।¹

इसी प्रकार ‘उरभौन में मौन को धूंधट कै’ वाला छंद है जिसमें काव्यानुभूति—(भावक और रसास्वाद की स्थिति) तथा प्रक्रिया को अद्भुत विलक्षणता के साथ समझा दिया गया है। ईश्वरीय प्रेम और सांसारिक प्रेम का संबंध तथा उसके अंतर के विषय में अनेक कवियों ने अनेक महत्वपूर्ण बातें की हैं किंतु घनानन्द ने एक छंद में इस संबंध का जैसा निरूपण किया है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं है। किसी पूर्वकथित शब्दशक्ति का नाम यहां नहीं दिया जा सकता। किंतु अर्थ के स्तरों पर विचार करने वाला इसमें बहुत कुछ पा जाता है :

प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै, विचार/वापुरो हहरि वार ही
तें फिर आयो है।/ताही एकरस हँ विवस अवगाहैं दोऊ,/नेही
हरि राधा, जिन्हैं देखे सरसायौ है।/ताकी कोऊ तरल तरंग
संग छूट्यो कन,/पूरि लोक लोकनि उमगि उफनायौ है/सोई
घनग्रानंद सुजान लागि हेत होत,/ऐसें मथि मन पै सरूप ठह-
रायौ है॥

ऐसी उद्भावनाएं घनानन्द जिस काव्य भाषा के माध्यम से करते हैं उसका विश्लेषण करना सहज नहीं है, उस भाषा का केवल आस्वादन किया जा सकता है।

भाषा की असाधारण क्षमता का कारण, आलंकारिक वक्रता के स्थान पर अनुभूति की वक्रता है जो घनानन्द की अपनी विशेषता है। इस विशेषता की ओर डा० गौड़ ने फारसी और हिंदी की परंपराओं के संदर्भ में संकेत करते हुए लिखा है कि : ‘अनुभूति के साथ चमत्कार का यह योग घनानन्दघन की शैली की सर्वोपरि विशेषता है। फारसी में कोरा चमत्कार था। हिंदी में जहां अनुभूति थी, वहां चमत्कार न था, चमत्कार था तो अनुभूति नहीं थी। आनन्दघन ने दोनों का योग किया है। उसका कारण इनकी कोमल और गंभीर अनुभूति थी। इनकी रचनाओं में ऐसे पद्यों की ही संख्या अधिक है जिनमें अनुभूतिमूलक वक्रताएं विद्यमान हैं।’¹

1. घनानन्द और स्वचंद काव्यधारा, पृ० 171.

घनानन्द के काव्य में ब्रजभाषा का जो परिनिष्ठित और अत्यंत विकसित रूप प्रयुक्त हुआ है उसकी तुलना किसी दूसरे कवि की ब्रजभाषा से नहीं की जा सकती है। आचार्य शुक्ल ने इसी बात को इस रूप में कहा था कि : 'इनकी सी विशुद्ध, सरस और वक्तिशालिनी ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रीढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। ... प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।'¹

परदत्ती शोधकरों ने इनकी भाषा को 'अतिवैयक्तिक' अतः 'दुर्घट' और 'दुर्बोध'² मान लिया तो इसका कारण इनकी भाषा की यही अप्रतिम प्रौढ़ता है।

घनानन्द की भाषां की इस अप्रतिम प्रौढ़ता के कारणों पर ध्यान दें तो उनमें से कुछ को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है :

ब्रजभाषा के ठेठ रूप से घनिष्ठ परिचय

यद्यपि घनानन्द दिल्ली से ब्रज गए थे जिसके परिणामस्वरूप साहित्यिक ब्रजभाषा में उनकी गति के असाधारण होने पर भी ठेठ ब्रजभाषा से उनका अप्रतिचित रहना ही स्वाभाविक था, किंतु साहित्यिक रूप में ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार करने वाले इस भाषाशिल्पी ने ठेठ ब्रजी के रूपों को भी उतनी ही सहजता के साथ पचा लिया। इनके छंदों में ब्रजभाषा की ठेठ शब्दावली को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि ये ब्रजप्रदेश से बाहर से आए होंगे। 'उनकी भाषा साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रज के लोक-प्रयुक्त स्वरूप का माधुर्य लिए हुए हैं।'³ उनके छंदों में प्रयुक्त ठेठ शब्दों में से कुछ इस प्रकार हैं :

अग्निलाई	उजैना	भोयौ	विसार्यो	झरा
आवस	गरैठी	चुहल	डेल	पैछर
आपचार्यौ	भभक	सौंज	गुरभनि	टेहुने
आँडी	सहारि	सर्यौ	तेह	बरहे
आवरो	दुहेली	बधूरा	हेली	संजोखे
उदेग				

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 320,
3. वशी, पृ० 373.

2. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 377.

संस्कृत फारसी आदि अन्य भाषाओं के शब्दों का निजीपन के साथ प्रयोग

किसी समर्थ कवि के लिए भाषा की बढ़ी हुई अभिव्यक्ति-क्षमता को स्वीकार करने पर, यह संभव नहीं होता कि वह अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग न करे। मध्यकाल के सूर, तुलसी जैसे कवियों ने हजारों शब्द अरबी-फारसी के प्रयुक्त किए हैं। दरबार के परिवेश के साथ घनिष्ठता से जुड़े हुए घनानन्द की भाषा में इस प्रकार के शब्दों की बहुलता स्वाभाविक ही होती, किंतु विचित्र बात है कि उनके छंदों में इस प्रकार के शब्द बहुत कम हैं। जहां प्रयत्नपूर्वक उन्होंने केवल फारसी की शब्दावली का प्रयोग किया है, जैसे इश्कलता आदि में उसकी बात अलग है किंतु जिन शब्दों के आधार पर उनकी कीर्ति फैली है उनमें इस प्रकार के शब्द नहीं के बराबर हैं। इसका कारण उनकी ब्रजभाषा पर अद्भुत पकड़ है, साथ ही अभिव्यक्ति की क्षमता की दृष्टि से ब्रजभाषा की निजी विशेषता भी। कुछ थोड़े से जो शब्द घनानन्द में इन भाषाओं के हैं, उनका प्रयोग भी उन्होंने अपनी भाषा की प्रकृति में ढाल कर ही किया है। जैसे : फारसी का शब्द है 'कशिश' (आकर्षण) इसका प्रयोग घनानन्द ने ब्रजभाषा की क्रिया के रूप में किया है : कसीसत—'खींच रहा है' के अर्थ में। संस्कृत से सीधे आए हुए अर्थात् तत्सम शब्दों का भी घनानन्द ने इसी रूप में प्रयोग किया है कि वे ब्रजभाषा के निजी व्यक्तित्व में बाधक न बनें। ब्रजभाषा में खूब घुलमिल जाने वाले तत्सम शब्दों का प्रयोग ही उन्होंने किया है।—सुरंतर, निहकाम, उदेग, अकह जैसे प्रयोगों के साथ ही लज्जा से लजाति, अधिक से अधिकाति, जैसे प्रयोग इसके प्रमाण हैं।

तद्भव शब्द ही हिंदी के अपने शब्द हैं, ऐसा भाषाशास्त्रियों का मत है। इस दृष्टि से ब्रजभाषा की सही प्रकृति घनानन्द में तद्भवता के रूप में मुखर हो उठी है। सामान्य ब्रजभाषा कवियों द्वारा प्रयुक्त तद्भव शब्दों का प्रयोग तो इन्होंने किया ही है, संस्कृत से सीधे आने वाले शब्दों को अपने ढंग से तद्भव बना लेने की इनकी क्षमता भी अपूर्व है।

अल्पप्रचलित तथा अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग जब किसी व्यापक काव्य-भाषा में होता है तो दुरुहता का दोष उत्पन्न होता है। यहां भी घनानन्द इस दृष्टि से अन्य कवियों से भिन्न पड़ते हैं कि उनके छंदों में आने वाले अपरिचित या अल्पप्रचलित शब्द

अर्थ के सहज प्रवाह में बाधक नहीं होते। कुछ शब्द हैं :

अछवाई	इकौसे	उफिल	गरेठी	चाड़	डवा
अतन-अलात	उलाहू	ऊक	गादरो	डडा	निरवरक
अभूतो	ऊठ	कारौटनि	घनीन	विरचें	भरक
ग्रंगेट	उलाहू	कोवरे	घंजी	बहीर	खोही
उथराई	ऊखिलताई				

इनमें से जो शब्द प्रचलित लगते हैं उनका प्रयोग घनानन्द ने भिन्न अर्थों में किया है, जैसे विरचे का विमुख होने के अर्थ में। खोही का पत्तों की छतरी के अर्थ में, भरक का खिचाव के अर्थ में।

नये शब्द बनाने में भी घनानन्द की सूक्ष्मबुद्धि उतनी ही सफल हुई है। जैसे मलोलिमई, भक्भूर, भूतागति, दिनदानि ।

मुरझाने के लिए—मूँझि परै

अचानक के लिए—अचकां

अतिथि के लिए—अतीत

कामदेव के लिए (वह भी प्रतिकूल अर्थ में मन से उत्पन्न होकर

पीड़ित करने वाले के लिए— मन का कपूत

किसी कार्य के लिए संकल्पपूर्वक बीड़ा उठाने वाले के लिए— बीरी

प्रेम का निर्वाह न करने वाले के नीरस प्रेम के लिए (भुँझला-

कर) —कठप्रेम

‘कठप्रेम’ शब्द अत्यन्त व्यंजनापूर्ण है। कठजामुन उस जामुन को कहते हैं जिसका फल स्वादरहित होता है। उसी तरह के प्रेम के लिए कठप्रेम। इस प्रकार के शब्दों से अर्थप्रवाह में बाधा तो नहीं आती किंतु इन शब्दों को भिन्न अर्थों में या नई ध्वनि के साथ प्रयुक्त देखकर इनके विषय में इस प्रकार की बातें कह दी जाती हैं कि : ‘ऐसे भी बहुत से शब्द उन्होंने व्यवहृत किए हैं जिनका प्रयोग अन्य कवियों ने नहीं किया है।’¹

वस्तुतः इस बात को इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन शब्दों में जो नई अर्थ छवि घनानन्द ने भर दी है उससे अन्य कवि परिचित नहीं रहे हैं। शब्दों से परिचित न होना और बात है, उनकी किन्हीं विशिष्ट अर्थ छवियों से परिचित होना तथा उनका प्रयोग करना सब के बश की बात नहीं है, जो घनानन्द का सहज गुण है।

मुहावरों पर असाधारण अधिकार के कारण भी घनानन्द की भाषा दूसरों से विशिष्ट और अधिक अभिव्यक्तिक्षमता वाली हो गई है। चिरोध के चमत्कार

1. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 373.

का आधार उनके मुहावरों का अपने निजीपन के साथ प्रयोग भी है। इस बात का उल्लेख पहले विरोध वाले प्रसंग में किया जा चुका है, वस्तुतः 'घनानन्द के मुहावरे भीतर की विवशता, खीझ, उपालंभ, विरह को व्यक्त करते हुए उन्हें रीति कवियों की कोटि से भिन्न कर देते हैं। आंखों में लगी 'लाग' को उन्होंने 'अनोखियै' विशेषण से संयुक्त कर जो प्रतीयमान अर्थ भरा है वह उनकी आत्मानुभूति का द्योतक है'।¹

मुहावरों को जितने परिष्कृत और काव्यात्मक रूप में घनानन्द ने प्रयुक्त किया है, अन्य कवियों में वैसी परिष्कृति या वैसी कलात्मकता नहीं मिलती। मुहावरों में किस तरह नई अर्थछवि घनानन्द ने भर दी है, इसको अनेक उदाहरणों द्वारा दिखाया जा चुका है।

शब्दशक्तियों का अर्थात् सूक्ष्म प्रयोग भी घनानन्द की भाषा को उत्तम काव्य भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करता है। विरोध के ज्ञमत्कार में लक्षणाशक्ति का कैसा अद्भुत उपयोग हुआ है, इसके अनेक उदाहरण संबद्ध प्रसंग में दिए जा चुके हैं। एक-एक पंक्ति दूर तक अर्थ की ध्वनियां प्रकाशित करती चली जाती हैं। 'इनकी रचना अभिधा के वाच्य रूप में कम, लक्षणा के लक्ष्य और व्यंजना के व्यंग्य रूप में अधिक है':²

1. देखियै दसा असाध अंखिया निपेटिनि की, भसमी विथा पै नित

लंघन करति हैं।

2. रावरे पेट की बूझि परै नहिं रीझ पचाय कै डोलत भूखै ॥
3. जाने वेई दिनराति बखाने तें जाय परे दिनराति को अंतर ।
4. या मन की जु दसा घनआनन्द जीव की जीवन जान ही जानै ।
5. भीर मैं हाय अकेले अधीर हैं रीझहिं लै रिखवार गये कित ।
6. मेरो मनोरथ हूँ बहियै, अर है मो मनोरथ पुरनकारी ।
7. मोह की बात तिहारी असूझ, पै मो हिय कौं तौ अमोहियौ मोहैं ।
8. नैननि काननि सौंही सदा घनआनन्द औरनि सों मुख फेरै ।
9. यह कैसो संजोग न बूझि परै जु वियोग न क्यौं हूँ चिछोहत है ।

इस प्रकार के सैकड़ों छंद हैं जिनमें अर्थ की नई नई छवियां ध्वनित होती रहती हैं। प्रणय क्षेत्र की अनुभूति और काव्यार्थ की पकड़ जितनी गहरी होगी, इन पंक्तियों में भावक उतनी ही सूक्ष्मतर व्यंजनाएं प्राप्त करता जाएगा।³

एक ही अर्थ में प्रयुक्त शब्दों की विभिन्न अर्थछवियों का ग्रहण करने के कारण घनानन्द की भाषा इतनी सूक्ष्म हो जाती है कि कभी-कभी शब्दक्रीड़ा का अम होने लगता है। एक छंद है :

1. रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना, पृ० 379, 80. 2. हिंदी साहित्य का अतीत शुगारकाल, पृ० 699. 3. इसीलिए ब्रजभाषा प्रवीन...

रीझि तिहारी न बूझि पर अहीं बूझति हैं कहाँ रीझत काहें ।

बूझि के भीझत हौं जु सुजान किथौं बिन बूझ की रीझ सराहें ।

रीझत बूझौं तऊ मन रीझत बूझि न रीझे हैं ओर निवाहें ।

सोचनि जूझत मूझत ज्यौ घनआनन्द रीझ औ बूझहि चाहें ॥

इसमें 'रीझ' और 'बूझ' में जितनी अर्थलवियां संभव हैं, सब उभार दी गई हैं ।

यह केवल शब्द-कीड़ा नहीं है । किन्तु इसे शब्द-कीड़ा मानकर ही कहा गया है

कि : 'एक ही शब्द को तोड़-परोड़ कर तरहतरह से उसका प्रयोग करना एक ही

छंद में बार-बार प्रयोग करना, अर्थ की नई-नई ध्वनियां ध्वनित करना और

कभी-कभी पूरा छंद उन्हीं शब्दों की कीड़ा द्वारा लिख डालना ये सारी बातें

उनकी शब्दकीड़ा में मिलती हैं । छंद मानो खेल-खेल में ही बन गया हो ।'

'अर्थ की नई-नई ध्वनियां ध्वनित करना' और 'खेल-खेल में छंद बन जाना' में

जमीन-आसमान का अंतर है । जाहिर है कि घनानन्द का यह छंद खेल-खेल में

ही नहीं बन गया है, इसके लिए उन शब्दों की अर्थ-ध्वनियों के साथ हृदय की

अनुभूति का योग और भाषा पर अद्भुत पकड़ दोनों समान रूप से अनिवार्य हैं ।

इसी प्रकार घनानन्द की भाषा वह काम सहज ही कर लेती है जो अन्य कवियों के लिए सहज और सुकर तो क्या श्रम साध्य भी नहीं होता । इसीलिए आचार्य शुक्ल कहते हैं कि : 'इनके हृदय का योग पाकर भाषा को नूतन गतिविधि का अभ्यास हुआ ।' तथा 'जबांदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ ।'

यही कारण है कि घनानन्द के छंदों के संग्रहकर्ता ब्रजनाथ ने इनकी कविता को समझने की जो शर्तें रखी हैं उनके अनुसार लाखों में एक ही उनको पूरा करके घनानन्द को समझने का दावा कर सकता है ।

रसात्मकता, ध्वन्यात्मकता, नागरिक साहित्यिक विलक्षणता, मुहावरों की व्यावहारिक सजीवता, अनुभूतिगत वक्रता, व्याकरण की पूरी चुस्ती, शब्द-शक्तियों की पूर्ण समृद्धि और ब्रजभाषा की निजी प्रकृतिगत कोमलता घनानन्द की भाषा को अन्य ब्रजभाषा कवियों से अलग प्रतिष्ठित कर देती है ।

घनानन्द की छंद योजना

घनानन्द की कीर्ति उनकी जित रचनाओं पर आधारित है उनमें छंद का वैविध्य नहीं है। प्रेम का अत्येकमय चित्रण चाहे वह रूप सौंदर्य का हो या विश्व कात-रहा का, उन्होंने सबैया और कविता में ही किया है। बीच-बीच में एकाध दोहे; सोरछे या छप्पय आ जाते हैं पर उनका महत्व उस दृष्टि से नगण्य सा है। वस्तुतः घनानन्द के प्रिय छंद सबैया और कविता ही हैं जिनके अत्यंत ललित और भावानुरूप विवान उन्होंने किए हैं। उनके छंदों में लय, गति, भावानुरूप ध्वनिप्रवाह के अनुसार मात्राओं का उतार-चढ़ाव इस रूप में मिलते हैं कि अन्य कवियों के छंदों के मुकाबले ये अधिक काव्यात्मक लगते हैं। जैसे अवधी में दोहा-चौपाई तुलसी-जायसी के हाथों पड़कर ऐसे लगते हैं कि इन कवियों का इन छंदों के साथ अन्योन्याश्रय संबंध है, वैसे ही घनानन्द के कविता सबैयों के साथ उनका संबंध भी है।

घनानन्द के कविता और सबैये की सबसे बड़ी विशेषता नाद-सौंदर्य और कथन की वक्रता के अनुसार छंद में यति की स्थितियों के चयन से उत्पन्न होती है। यति के संबंध में कोई नियम नहीं बनाया जा सकता। वैसे बड़े छंदों में यति के स्थान के संबंध में शास्त्रीय नियम हैं,¹ किन्तु समर्थ कवि भाव प्रवाह के अनुरूप ही उनका स्थान निश्चित करते हैं। घनानन्द के छंदों में विषय वैविध्य नहीं है जिससे बहुत से प्रयोगों की संभावना का सवाल ही नहीं उठता। फिर भी उनके प्रिय छंद कविता और सबैये में भावानुरूप प्रवाह के साथ ही अत्यंत नाटकीय स्थितियां उत्पन्न करने का काम यति से लिया गया है। रूप और गुण में ऐंठी प्रिया का एक चित्र है जिसमें उसकी ऐंठ की ध्वनि और यति के माध्यम से ही भरपूर रूप में उभार कर रख दिया गया है:

रूप-गुण-ऐंठी सु अमैठी उर पैठी बैठी.../लाडनि निरैठी, मति
बोलनि हरै हरी।...

1. डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल': छदशास्त्र, प० 94-111,

जोबन-गहेली अलबेली अर्ति ही नवेली, /हेली है सुरति बौरी
आंचर टरै टरी ॥

एक रूपक में आश्रय-और आलंबन की चेष्टाओं और प्रतिक्रियाओं का मूर्तन सवैया की लहरीली गति के माध्यम से किया गया है। इसमें ध्यान देने की बात यह है कि आश्रय की दृष्टि के भक्तों से लहकती हुई रूपलता का भूमना (लहकना) छंद की गति में लहर रहा है :

लाड़-लसी लहकै श्रंग रूप-लता लगि दीठि झकोरै ।

आलस्थयुक्त (तथा आलस्यजन्य) ढीली दशा (शिथिलता) का वर्णन करने वाले कवित्त की पंक्ति की ढिलाई उसकी यति-योजना से अमने आप उभरती है :

आरस-रसीली घनआनंद सुजान प्यारी, /ढीली दशा ही सौं मेरी
मति लीनी कसि है ।

उस ढीली दशा में जब प्रेमी के मन को कसने की शक्ति का कथन होता है, तो ढीली चलती हुई पंक्ति भी कस उठती है। मदपान से बहकती हुई प्रिया का बहकना सवैया की पंक्ति की लय से मूर्तिमान हो उठता है :

पल खोलि ढकै लगि जात जकै, न सम्हारि सकै बलकै रु बकै ।

विरहिणी एक छंद में संदेशों की गली के थकने की बात कहती है, जो थकान पंक्ति के अंतिम शब्दों में स्वयं उत्तर आई है :

भरियै किह भाँति कहा करियै अब गैल संदेसन हूँ कि थकी ।

भगवान की कृपा अत्यंत द्रवणशील है। उसकी ठरक (वह जाने की प्रवृत्ति) कवित्त की अंतिम पंक्तियों में छंद की गति और असाधारण विराम में परिलक्षित है। अंतिम शब्द इस तरह विठाया गया है, जैसे द्रवित कृपा को बलातरोक रखा गया है। यही कवि कहना भी चाहता है :

आरस जग्हौ है कैसें सोई है कृपा-ठरक ।

नाद-सौंदर्य के लिए घनानन्द के छंदों में कुछ को छांटना संभव नहीं है। भावानुरूप नाद-सूल्पि उनके छंदों की सहज विशेषता के रूप में मिलती है। घुमड़ते हुए बादल के वर्णन में बजते हुए मृदंग की ध्वनि का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने किया है। प्रसिद्ध छंद 'ए रे बीर पौन तेरी सबै ओर गौन के', 'दूसरे चरण में आए हुए, आनंद निधान सुखदान दुखियानि दै' में मृदंग की ध्वनि का बड़ा ही सुन्दर अनुरण है।¹

अनुभावों की सूक्ष्म गतियों और ध्वनियों तक को घनानन्द के छंदों की पंक्तियों में शब्द-योजना द्वारा मूर्तिमान करने का सफल प्रयास किया गया है :

'अभिलाषनि लाखनि भाँति भरीं बर्लीन रुमांच लैं कांपति हैं।'

'बरुनीन रुमांच हैं कांपति हैं' में ध्वनि तरंगों पर ध्यान देने पर कंप और रोमांच

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० 324.

का अनुभव स्पष्टतः किया जा सकता है। इसी छंद में दूरी नापने में 'मापति' किया की 'धनि-योजना' माप्य दूरी की दीर्घता का स्पष्ट आभास कराती है:

'जब ते तुम ग्रावनि-ग्रीष्मि बदी तब ते अखियां मग मापति हैं।
संयोग का एक चित्र है जिसमें चरम सुख की प्राप्ति के बाद आलस्य के अभाव से छके प्रेमी का सुखद आलस्य छंद की लय में मूर्त है:

सोए हैं ग्रंगनि ग्रंग समोए सु भोए अनंग के रंगनिस्यौं करि।

केलि-कला रस आलस आसव पा न छके धनश्रानन्द यौं करि।

प्रेम-निसा मधि रागत पागत लागत ग्रंगनि जागत ज्यौं करि।

ऐसे सुजान-बिलास निधान हैं सोए जगे कहि ब्यौरियै क्यौं

करि॥

छंद के गणित का ध्यान तो इसमें रखा ही गया है, आलस्य की दीर्घता और रस-पूर्ण अनुकूलता की स्फीति का धनिमूर्तन धनानन्द की अपनी विशेषता है।

छंदशास्त्र के नियमों के अनुसार मात्रा और लघु-गुरु की गणना करके धनानन्द के छंदों की उत्कृष्टता सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार इस बात की भी जरूरत नहीं है कि उनके असाधारण तुकों के अत्यंत कलात्मक निर्वाह के प्रमाण दिए जाएं। ये विशेषता स्वतः सिद्ध हैं। कवित्त और संवैया छंदों को जितनी पूर्णता धनानन्द ने दी है उतनी किसी एक कवि ने दी हो कहना

सहज नहीं है।

कवित्त संवैया के अतिरिक्त धनानन्द के विशद काव्य में उस समय प्रचलित अन्य प्रमुख छंदों का सफल उपयोग भी हुआ है:

1. दोहा चौपाई-छंद में ब्रज की महिमा और कृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। इस प्रकार की रचनाएं तीन भागों में बांटी गई हैं:¹

एक—केवल दोहा-छंद में—प्रेम-सरोवर, ब्रज-बिलास, परमहंस वंशावली।
दो—केवल चौपाई-छंद में—प्रीति-पावस, नाम-माधुरी, गिरिपूजन, भावनाप्रकाश
धाम-चमत्कार, ब्रज-स्वरूप, गोकुल-चरित्र, प्रेम-
पहेली, रसना यश, ब्रजप्रसाद, मुरलिकामोद।

तीन—दोहा-चौपाई दोनों में—

दोहा प्रधान : कृष्ण कौमुदी (75 दोहा, 9 चौपाई)

चौपाई प्रधान : यमुना यश (1 दोहा, 90 चौपाई)

सरसवसंत (13 दोहा, 59 चौपाई)

अनुभवचंद्रिका (3 दोहा, 52 चौपाई)

रंगबधाई (3 दोहा, 50 चौपाई)

प्रेम-पद्धति (35 दोहा, 108 चौपाई)

1. रीतिस्वच्छंद काव्यधारा, पृ० 405-406.

वृषभानुपुर सुषमा-वर्णन (1 दोहा, 40 चौपाई)

गोकुलगीत (2 दोहा, 21 चौपाई)

विचारसागर (2 दोहा, 86 चौपाई)

प्रियाप्रसाद (25 दोहा, 65 चौपाई)

ब्रज व्यवहार (26 दोहा, 211 चौपाई)

गिरिगाथा (4 दोहा, 52 चौपाई)

2. पद शैली—1957 पद सूर, तुलसी, मीरा के पदों जैसे हैं।
3. फारसी शैली से प्रभावित छंद—इश्कलता और वियोग-बेलि।
4. नये छंद—गोकुल धिनोद, मनोरथ मंजरी के छंद नये हैं। ये छंद प्रस्तार-भेद से किसी छंद के अंतर्गत आ सकते हैं किन्तु प्रायः अप्रचलित हैं।
5. अनेक छंद बाली कृतियाँ—कृपाकंद, प्रेम-पत्रिका, दानधटा, वृन्दावन-मुद्रा, प्रकीर्णक आदि।

इन ग्रंथों में कवित्त, सवैया, पद, दोहा, सोरठा, छप्पण, चौपाई, वरचै, महावरचै, क्रियंगी, लवंग आदि मुच्य हैं।

‘परिमाण की दृष्टि से घनानन्द का साहित्य प्रचुर है और उसमें प्रयुक्त छंदों की विविधता भी पर्याप्त है जिससे यह सूचित होता है कि घनानन्द रीतिवद्व कवियों के समान केवल दो-चार छंदों तक ही अपने को सीमित नहीं रखते थे वरन् जब जी में आता था नये और अपने युग में सामान्यतया अप्रचलित छंदों को भी ग्रहण कर काव्य रचना किया करते थे। यह छंद वैविध्य उनकी भाव-प्रकाशनार्थ स्वच्छंद गति ग्रहण का ही सूचक है। उनके भाव हर छंद में अनाहत और अबाध रूप से व्यक्त हुए हैं, नए छंद का ग्रहण उनकी भावधारा का अव-रोधक नहीं हुआ है। उससे यह तो स्पष्ट ही हो जाना चाहिए कि उनमें भावना पक्ष प्रधान था और हर छंद में, जिसका भी उपयोग उन्होंने किया है उनका प्रेम, उनकी निष्ठा अक्षत रूप से झलकती है। परंतु इन सबके बावजूद यह कहना पड़ेगा कि कला और सौंदर्य की दृष्टि से घनानन्द का जो उत्कर्ष उनके कवित्त सवैयों में (विशेषतः सुजानहित में) लक्षित होता है वह किसी अन्य रचना में नहीं।’¹

घनानन्द की छंद योजना के संबंध में डा० कृष्णचन्द्र वर्मा के उपर्युक्त विचारों से असहमत होने का कोई कारण नहीं है। जहां तक तुलना का सबल है संख्या की दृष्टि से मध्यकाल के कवियों में सबसे अधिक छंदों में रचना करने वाले केशव दास हैं। घनानन्द ने उतने छंदों को नहीं अपनाया, किन्तु उनके हृदय का आवेग-जिन दो छंदों के साथ जुड़ गया, उनको जितना निखार और कलात्मक सौष्ठुद्व वे दे सके, उतना कहीं और नहीं मिला। सुजानहित के छंदों का यह असाधारण सौष्ठुद्व घनानन्द के असाधारण प्रेम का व्याख्याता भी है।

1. रीति स्वच्छंद काव्यधारा पृ० 406-407.

घनानन्द का अध्ययन करते हुए उनकी जो विवेषताएं दिलाई पड़ती हैं, उनके आधार पर यह उचित नहीं प्रतीत होता कि उन्हें रीति स्वच्छंद वर्ग में रख कर यह मान लिया जाए कि उनका काव्य उस युग की शास्त्रसम्मत प्रौढ़ता से रहित है। जहां तक इतिहास लेखकों का प्रश्न है, सब ने उन्हें उसी वर्ग में रखा है और इनके काव्य का मूल्यांकन इस विभाजन से कहीं न कहीं प्रभावित हुआ है। वैसे कुछ टीकाकारों ने घनानन्द के छंदों में नायिकाभेद के अनुसार नायिकाओं को पहचानने का प्रयास किया है।¹ घनानन्द के काव्य में शास्त्र की रूढ़ियों का संधान उनके काव्य को समझने में सहायक नहीं होता, किंतु इससे इतना स्पष्ट है कि उनको रीति परंपरा से बिल्कुल बाहर कर देने का काम पहले नहीं हुआ था।

रसनिरूपक आचार्यों में अयोध्या नरेश प्रतापनारायणसिंह जूदेव के रस-शास्त्रीय ग्रन्थ 'रसकुसुमाकर' में घनानन्द के सात छंद उद्धृत हैं जिनमें एक मंगलाचरण² में है और एक उपालंभ,³ एक परकीया,⁴ एक अनूढ़ा परकीया,⁵ एक मुग्धा खंडिता,⁶ एक वियोग दशा के स्मरण⁷ और एक भूतप्रवास⁸ के उदाहरण के रूप में रखे हुए हैं।

'रसकुसुमाकर' के रचयिता ने ठाकुर, आलम, रसखान के छंद भी उद्धृत किए हैं, अतः इससे यह निष्कर्ष तो नहीं निकलता कि घनानन्द को वे अथ रीति-स्वच्छंद कवियों से पूर्यक मानते हैं, किंतु इतना स्पष्ट हो जाता है कि उनके सामने हिंदी साहित्य के इतिहास-लेखकों वाला वर्ग-विभाजन नहीं था। हम यह न मानें कि घनानन्द ने नायिकाभेद के अनुसार छंदों की रचना की है। किंतु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनका काव्यशास्त्रीय प्रौढ़ता से युक्त है अतः इस प्रकार का वर्ग विभाजन उचित नहीं हुआ है। रस और नायिकाभेद की शास्त्रीय परंपरा

1. प्रतापनारायणसिंह जूदेव : 'रस कुसुमाकर', इंडियन प्रेस, पृ० 1894.

2. प्रतापनारायणसिंह जूदेव : 'रसकुसुमाकर', इंडियन प्रेस, 1894 ई०, पृ० 3.

3. वही, पृ० 58. 4. वही, पृ० 105. 5. वही, पृ० 106-107. 6. वही, पृ० 130.

7. वही, पृ० 175-176. 8. वही, पृ० 171-173.

में उनके छंदों की स्वीकृति इस बात का प्रमाण है कि घनानन्द को केवल स्वच्छंद वारा के साथ जोड़ने का प्रयास आचार्य शुक्ल के इतिहास के बाद से ही आरंभ हुआ।

घनानन्द के काव्य में तुलसीदास जैसी अनन्य एकनिष्ठता और समर्पण-भाव है, बिहारी जैसी कला-कुशलता है, रीति स्वच्छंद प्रेम गायक कवियों की सघन और तीव्र प्रेम पीर है एवं लौकिक और पारदौकिक प्रेम के संबंध की उनकी अवधारणा सूफियों की तुलना में अधिक स्पष्ट है। ऐसे कवि को किसी एक वर्ग में रख देना उसके काव्य की अपार संभावनाओं का निषेध करना है। एक और अकेले अपने लिए एक वर्ग बनवा लेने वाले नवि बिहारी की अपेक्षा अधिक रीतिसिद्ध और दूसरी ओर ब्रजभाषा की परंपरा को नकारने वाली छायावादी अभिव्यंजना को गहराई से प्रभावित करने वाले कवि घनानन्द के काव्य का वास्तविक मूल्यांकन होना अभी बाकी है जिसकी मोटी रेखाएं खींचते का प्रयास यहां किया जा सका है।

सहायक ग्रंथ

1. हिंदी साहित्य का इतिहास—आचार्य शुक्ल, १६वां पुनर्मुद्रण, सं० २०२५।
2. रीतिस्वच्छ वाच्यधारा—डा० द्वृष्णचन्द्र वर्मा, प्रथम संस्क०, १९६९ ई०।
3. घनानन्द कविता, सं० आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र, द्वितीय संस्क०, सं० २०१२।
4. हिंदी साहित्य का अतीत—प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, द्वितीय संस्क०, सं०, २०२३ (द्वासरा भाग, शृंगारकाल)।
5. घनानन्द कविता—भाष्येन्दु शेखर, भाग-१, भाष्यकार चन्द्रशेखर मिश्र, प्रथम संस्क०, सं० २०१७।
6. घनानन्द कविता—भाष्येन्दुशेखर, भाग-२, भाष्यकार, चन्द्रशेखर मिश्र, प्रथम संस्क०, सं० २०२३।
7. हिंदी साहित्य, द्वितीय खंड, सं० धीरेन्द्र वर्मा, भारतीय हिंदी परिषद, प्रथम संस्क०, १९५९ ई०।
8. हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, षष्ठ भाग, सं० डा० नगेन्द्र, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्रथम संस्क०, सं० २०१५।
9. रीतिकालीन कवियों की प्रेमव्यंजना—डा० बच्चन सिंह, प्रथम संस्क०, सं० २०१५।
10. रसकुसुमाकर—अयोध्यानरेश प्रतापनारायणसिंह जूदेव, इडिया प्रेस, प्रथम संस्क०, १८९४ ई०।
11. हिंदी रीति साहित्य—डा० भगीरथ मिश्र, राजकमल मूल्यांकन माला, प्रथम संस्क०, १९५६ ई०।
12. घनानन्द ग्रंथावली—सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद-परिषद प्रथम संस्क०, सं० २००७।
13. घनानन्द और स्वच्छ वाच्यधारा—डा० मनोहरलाल गौड़, ना० प्र० स०, काशी, प्रथम संस्क०, सं० २०१५।

14. हिंदी भाषा और साहित्य का विकास—हरिग्रीष, दरभंगा, सं० 1997।
15. बिहारी और घनानन्द—डा० परमलाल गुप्त, नवयुग ग्रंथागार, लखनऊ, प्रथम संस्क०, 1972 ई०।
16. रीतिकवियों की मौलिक देन—डा० किशोरीलाल, साहित्य भवन, इलाहाबाद प्रथम संस्क०, 1911 ई०।
17. रीतिकालीन हिंदी कविता और सेनापति—डा० रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन।



